श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

आत्मधर्म [४१३]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ जगत में होनहार.....
२ पुरुषार्थी के उद्‌गार
३ क्रमबद्धपर्याय : कुछ प्रश्नोत्तर
४ वास्तव में भगवान की.....
[समयसार प्रवचन]
५ और कैसा है यह आत्मा ?
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

हे जीव! तूने आत्मा को भूलकर, देहदृष्टि रखकर अनंत जीवन व्यतीत किये, तथापि उसके बाद भी तेरे भवभ्रमण का दु:ख तो ज्यों का त्यों बना ही रहा; अब सत्पुरुषों की आज्ञानुसार आत्मदृष्टिपूर्वक एक जीवन तो ऐसा व्यतीत कर कि जिसके बाद कोई भव ही धारण न करना पड़े।

—पूज्य स्वामीजी

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१३] अंक : ५

जगत में होनहार सो होवै, सुर नृप नाहिं मिटावै।
जगत में होनहार०॥टेक॥

आदिनाथ से को भोजन में, अंतराय उपजावै।
पारसप्रभु को ध्यानलीन लखि, कमठ मेघ बरसावै॥
जगत में होनहार०॥१॥

लखमण से संग भ्राता जाके, सीता राम गमावै।
प्रतिनारायण रावण से की, हनुमत लंक जरावै॥
जगत में होनहार०॥२॥

जैसो कमावै तैसो ही पावै, यों 'बुधजन' समझावै।
आप आपको आप कमावौ, क्यों परद्रव्य कमावै॥
जगत में होनहार०॥३॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

पुरुषार्थी के उद्‌गार

किसी निर्धन मनुष्य को कोई बड़ा राज्य मिलने का प्रसंग उपस्थित हो जाये और वहाँ वह कहे कि—'अरे! हम तो गरीब हैं, हममें राज्य लेने या राजा होने की पात्रता कहाँ से हो सकती है?' तो वह पुण्यहीन है। जो पुण्यवान है, वह तो तुरंत स्वीकार करता है कि हम राजा होने के पात्र हैं, हम अपनी शक्ति से राज्य का संचालन करेंगे।

उसीप्रकार यहाँ निर्धन अर्थात् अज्ञानी जीव को आचार्यदेव उसका चैतन्यराज्य मिलने की बात सुनाते हैं कि—'अरे जीव! तुझ में केवलज्ञान का महान पद लेने की शक्ति है; ज्ञान-साम्राज्य को प्राप्त करके उसे संभालने की सामर्थ्य है।

वहाँ जो ऐसा कहता है कि—'अरे! हम तो अज्ञानी, पाप में डूबे हैं; हममें केवलज्ञान प्राप्त करने या परमात्मा होने की पात्रता कैसे हो सकती है?' तो वह जीव पुरुषार्थ हीन है।

और जो पुरुषार्थी है, आत्मा का उल्लासी है, वह तो ऐसी बात सुनकर तुरंत स्वीकार करता है कि—'अहो! हमारा आत्मा केवलज्ञान लेने की पात्रता वाला है; हमारी पर्याय में केवलज्ञान साम्राज्य संभालने की शक्ति है। हम अपनी शक्ति से केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।'

इसप्रकार आत्मशक्ति का विश्वास करके उसमें लीनता द्वारा धर्मी जीव केवलज्ञान-साम्राज्य प्राप्त करता है।

समस्त जीवों में ऐसी शक्ति है; उसे जो स्वीकार करता है वही तद्‌रूप परिणमित होता है।

''सर्व जीव छे सिद्धसम..... जे समझे ते थाय॥''

—संप्रदान शक्ति के प्रवचन से

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७३, सितंबर १९५९, पृष्ठ २३५

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | कुछ प्रश्नोत्तर

आज के इस बहुचर्चित विषय 'क्रमबद्धपर्याय' की विस्तृत चर्चा के उपरांत भी कुछ शंकाऐं, आशंकाऐं और प्रश्न उपस्थित किये जाते रहे हैं।

गत एक वर्ष से आत्मधर्म के संपादकीयों एवं प्रवचनों के माध्यम से 'क्रमबद्धपर्याय' की चर्चा निरंतर चलती रही है। इस 'क्रमबद्ध' वर्ष (सन् १९७९ई०) में इसका प्रचार व प्रसार भी बहुत हुआ है। अतः अनेकानेक अभ्यासी आत्मार्थी बंधुओं की ओर से भी कुछ स्पष्टीकरण चाहनेवाले प्रश्न निरंतर आते रहे हैं।

यद्यपि 'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन' में बहुत-बहुत स्पष्टीकरण आ गया है तथापि विषय के सर्वांगीण स्पष्टीकरण के लिए उन पर भी विचार कर लेना असंगत न होगा।

इसी भावना से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं। विषय की पुनरावृत्ति न हो और सभी संभावित प्रश्नों के उत्तर भी आ जावें—इस दृष्टि से समागत प्रश्नों को हूबहू न रखकर सभी संभावित प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्नोत्तरमाला को व्यवस्थित रूप देना उचित प्रतीत हुआ। तद्नुसार कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं:—

(१) प्रश्न :- समयसार गाथा ३०८ से ३११ की टीका में समागत जिन पंक्तियों को 'क्रमबद्धपर्याय' के समर्थन में प्रस्तुत किया जाता है, उनका आशय तो मात्र इतना ही है कि जीव, अजीव नहीं है और अजीव, जीव नहीं है। उसमें तो मात्र दो द्रव्यों की भिन्नता बताई है, उसमें से पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं-यह बात कहाँ निकलती है ?

उत्तर :- उक्त पंक्तियों में दो द्रव्यों की मात्र भिन्नता सिद्ध नहीं की गई है, अपितु स्पष्ट कहा गया है कि ''जीव क्रमनियमित अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं; इसीप्रकार अजीव भी अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं।''

यहाँ दो द्रव्यों की भिन्नता के साथ-साथ द्रव्यों के परिणमन की व्यवस्था भी बताई गयी है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं है, प्रत्येक द्रव्य अपने परिणमन का कर्ता-हर्ता स्वयं है और वह परिणमन भी अव्यवस्थित नहीं है, नियमित है; नियमित ही नहीं, अपितु एक निश्चित क्रम में नियमित अर्थात् बंधा हुआ है, पूर्ण व्यवस्थित एवं निश्चित है।

और अधिक स्पष्ट करें तो इसमें जीव को अकर्ता सिद्ध किया गया है, जैसा कि गाथा की उत्थानिका एवं टीका की अंतिम पंक्ति से स्पष्ट है, जो कि इसप्रकार है:—

"अथात्मनोऽकर्तृत्वं दृष्टांतपुरस्सरमाख्याति।

अब आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टांतपूर्वक सिद्ध करते हैं।"

"अतो जीवोऽकर्त्ता अवतिष्ठते।

इसलिए जीव अकर्ता सिद्ध होता है।"

जीव से अजीव की भिन्नता तो जीवाजीवाधिकार में ही स्पष्ट कर आये थे, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में उसकी चर्चा की क्या आवश्यकता थी? यहाँ तो जीव अपने क्रमनियमित परिणामों से स्वयं परिणमता हुआ—बदलता हुआ भी इतना नहीं बदल जाता कि वह अजीव हो जाय—यह बात कही जा रही है। उसके बदलने की भी एक सीमा है, वह अपने में ही बदल सकता है। बदलकर भी अपने रूप ही रहता है, पर-रूप नहीं होता; पर-पदार्थ भी उसरूप नहीं होता।

जो ज्ञानगुण अभी कुमतिज्ञानरूप है, वह बदलकर अगले क्षण सुमतिज्ञान हो सकता है, सुमतिज्ञान से पलटकर ज्ञान अगले क्षण केवलज्ञानरूप हो सकता है; पर ऐसा कभी नहीं हो सकता कि वह रसरूप हो जाये, रंगरूप हो जाये या सुखरूप हो जाये। पर्याय के बदलाव की भी एक मर्यादा है, और वह भी नियमित है; वह हमारी इच्छानुसार नहीं, बल्कि अपने निश्चित क्रमानुसार बदलती है। यह बात यहाँ स्पष्ट की गई है।

एक द्रव्य दूसरे का कुछ भी परिणमन नहीं करता, करे तो वह उसरूप हो जाये अर्थात् जब वह उसरूप होवे तब वह उसे परिणमा सकता है, अन्यथा नहीं। अजीव को परिणमाने-बदलने के लिए जीव को अजीवरूप होना होगा। जब वह स्वयं अजीवरूप हो, तब वह अजीव के परिणमन का कर्ता हो सकता है, और ऐसा कभी होता नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव

अपने क्रमनियमित परिणामों में परिणमता—बदलता हुआ जीव ही रहता है, अजीव नहीं हो जाता।

दूसरी बात यह है कि यद्यपि जीव अपने परिणामों का कर्ता है, तथापि उसे करने का कुछ बोझा उसके माथे पर नहीं है, क्योंकि वह परिणमन भी सहज होता है और अपने नियमित क्रम में होता है। यही बात यहाँ स्पष्ट की गयी है। पुद्गलादि अजीव द्रव्य अपने परिणमन का कोई बोझा नहीं रखते, तो क्या उनका परिणमन रुक जाता है। यदि नहीं, तो फिर जीव ही अपने माथे पर बोझा क्यों रखें ?

परिणमन को निश्चित बताकर द्रव्य-गुण का कुछ अधिकार कम नहीं किया गया है अपितु बोझा हटाया है, क्योंकि वह अपने परिणाम का अधिकृत कर्ता और भोक्ता तो है ही।

वस्तुतः बात तो यह है कि जिसप्रकार द्रव्य सत् है, गुण सत् है, उसीप्रकार पर्याय भी सत् है।

द्रव्य और गुणों के बारे में हम सबका विश्वास है कि उनमें कुछ फेरफार संभव नहीं है, अतः उनके बदलने का हमें विकल्प भी नहीं उठता। पर परिणमनशील होने से पर्याय के संबंध में जगत की कुछ ऐसी धारणा है कि उसमें फेरफार किया जा सकता है, अतः उसमें फेरफार करने की बुद्धि होती है।

द्रव्य-गुण के साथ पर्याय भी स्वसमय की सत् है—उसमें भी अपनी इच्छानुसार कोई फेरफार नहीं किया जा सकता है। जब हमें यह विश्वास हो जावेगा तो उसमें फेरफार करने की बुद्धि भी नहीं रहेगी।

पर्याय भी स्वकाल की सत् है, अचला है, पार्वती है, सती है—आदि विस्तार से स्पष्ट किया जा चुका है। अतः यहाँ विस्तार देना उपयुक्त नहीं है। फिर भी जो लोग पर्याय को अपनी इच्छानुसार बदलना चाहते हैं, उनसे हम पूछते हैं कि पर्यायों के अनादि-अनंत प्रवाहक्रम में वे भूतकाल की पर्यायें बदलना चाहते हैं या वर्तमान की या भविष्य की ?

भूतकाल की पर्यायें तो बदली नहीं जा सकतीं, क्योंकि वे तो स्वयं बदल चुकी हैं, समाप्त हो चुकी हैं, अतः उनमें तो फेर-बदल की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अब रही वर्तमान और भविष्य की पर्यायें। वर्तमान पर्याय भी हो ही रही है, उसमें भी क्या किया जा सकता है ?

इस पर यदि कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त कोई अज्ञानी कहे कि वर्तमान पर्याय में कुछ क्यों नहीं किया जा सकता है ? लो मैं उसे अभी उखाड़ फेंकता हूँ। उससे कहते हैं भाई ! जरा विचार तो करो, वह उत्पन्न तो हो ही गई है, अत: उसे उत्पन्न होने से रोकना तो संभव नहीं है। अब रही बात उखाड़ फेंकने की, सो भाई उसका काल ही एकसमय है। एकसमय बाद वह स्वयं उखड़ जानेवाली है, उसमें तुम्हारा क्या काम ?

दूसरी बात यह भी तो है कि हमारे क्षयोपशमज्ञान में वह पर्याय उत्पन्न होने से असंख्य समय बाद आती है। जब तक हम उसे उखाड़ने की सोचेंगे तब तक तो वह कभी की उखड़ चुकी होगी।

इस पर यदि वह कहे कि न सही भूतकाल की और वर्तमान की पर्याय, भविष्य की पर्यायें तो हम बदल ही सकते हैं।

उनसे कहते हैं कि भविष्य की पर्यायें अभी हैं ही कहाँ—जो आप उन्हें बदलेंगे ?

इस पर यदि यह कहा जाये कि भविष्य में बुरी पर्यायें नहीं आने देंगे, अच्छी-अच्छी पर्यायें लावेंगे; तो यह प्रश्न खड़ा होगा कि कौन पर्याय अच्छी है, कौन बुरी—इसका निर्णय कौन करेगा ? विभिन्न रुचय: हि लोक:—इस नीति के अनुसार अच्छे-बुरे का निर्णय भी असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है।

यदि कोई कहे कि हम अपनी रुचि के अनुसार निर्णय करेंगे, उनसे कहते हैं कि यदि आप सिर्फ अपनी ही भावी पर्याय के कर्ता बनते तो बात अलग थी; पर आप तो पर-पदार्थों की भी पर्यायें अपने अनुकूल बदलना चाहते हैं, उनमें इष्ट-अनिष्ट का निर्णय मात्र आपकी ही इच्छा से कैसे होगा ? जगत में अन्य प्राणी भी तो हैं, उनकी इच्छा के व्याघात का प्रसंग अवश्य आवेगा।

दूसरे क्या आपको पता है कि भविष्य में अमुक पर्याय आनेवाली है, जिससे आप यह निर्णय कर सकें कि अमुक पर्याय को बदल कर मैं अमुक पर्याय लाऊँगा ? यदि नहीं, तो फिर यह अहंकार झूठा ही सिद्ध हुआ कि मैंने ऐसा नहीं होने दिया और ऐसा किया, क्योंकि जो कार्य संपन्न हुआ है—वह नहीं होनेवाला था, अन्य होनेवाला था—इसका निर्णय कैसे होगा ? हो सकता है—वही होनेवाला हो, जिसे आप कहते हैं कि मैंने ऐसा किया है।

बहुत दूर जाकर भी भविष्य की पर्यायों में फेरफार करने की बात सिद्ध कर पाना संभव नहीं है, अत: व्यर्थ प्रयास से क्या लाभ ?

अंतोगत्वा यह स्वीकार करना ही श्रेष्ठ है कि प्रत्येक द्रव्य क्रमनियमित अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ निजरूप ही रहता है, पररूप नहीं होता।

(२) प्रश्न :- यदि कोई किसी को नहीं परिणमाता तो फिर यह परिणमन होता कैसे है, इसे कौन कर जाता है ? यदि कभी यह परिणमन रुक जाय तो ? अथवा कभी धीरे-धीरे हो और कभी तेजी से—इसका नियामक कौन होगा ?

उत्तर :- प्रत्येक द्रव्य स्वयं परिणमनशील है, ध्रुवता के समान परिणमन भी उसका स्वभाव है, उसे अपने परिणमन में पर की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि स्वभाव पर-निरपेक्ष ही होता है। यह परिणमन कभी रुक जाये—इसका प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि परिणमन भी इसका नित्यस्वभाव है। अर्थात् नित्यपरिणमनशीलता प्रत्येक द्रव्य का सहज स्वभाव है। जल्दी और देरी होने की भी कोई समस्या नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पर्याय एकसमय की ही होती है। किसी पर्याय का दो समय रुकने का प्रश्न ही नहीं उठता और एकसमय के पहिले समाप्त होने का भी प्रश्न संभव नहीं है।

अब रही बात यह कि यह सब कौन करता है ? उसके संबंध में बात यह है कि प्रत्येक द्रव्य में अनंत शक्तियाँ पड़ी हैं, निरंतर उल्लसित हो रही हैं, उनके द्वारा ही यह सब सहज होता रहता है।

(३) प्रश्न :- वे अनंत शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं, जिनके द्वारा यह सब होता है ?

उत्तर :- क्या अनंत भी गिनाई जा सकती हैं ?

(४) प्रश्न :- कुछ तो बताइये न ?

उत्तर :- भावशक्ति, अभावशक्ति, भावाभावशक्ति, अभावभावशक्ति, भावभावशक्ति, अभावाभावशक्ति आदि।

(५) प्रश्न :- पर्यायों के उत्पाद और नाश में इन शक्तियों का क्या योगदान है ? कृपया संक्षेप में सझाइये।

उत्तर :- प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी शक्ति है जिसके कारण द्रव्य अपनी वर्तमान अवस्था

से युक्त होता है, अर्थात् उसकी निश्चित अवस्था होती ही है, जिसे भावशक्ति कहते हैं।[१] प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी भी शक्ति होती है, जिसके कारण वर्तमान अवस्था के अतिरिक्त धन्य कोई अवस्था नहीं होती, इस शक्ति का नाम अभावशक्ति है।[२]

उक्त दोनों शक्तियों के कारण प्रत्येक द्रव्य की प्रतिसमय सुनिश्चित पर्याय ही होती है, अन्य नहीं।

(६) प्रश्न :- पर्याय को स्वसमय में कौन लाता है और एकसमय बाद कौन हटाता है ? पर्याय स्वसमय में आ ही जावे और अगले समय हट जाये—इसका नियामक कौन है ? यदि पर्याय स्वसमय पर न आये तो उसे कौन लावे और एकसमय बाद भी न हटे तो कौन हटाये ? ऐसी स्थिति में या तो द्रव्य पर्याय से खाली हो जावेगा या एकसमय में दो-दो पर्यायें हो जावेंगी।

उत्तर :- इसकी आप चिंता न करें। ऐसा कभी नहीं होगा, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी भी शक्ति है, जिसके कारण वर्तमान पर्याय का नियम से आगामी समय में अभाव हो जायेगा; उस शक्ति का नाम है भावाभावशक्ति।[३] तथा एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण आगामी समय में होनेवाली पर्याय नियम से उत्पन्न होगी ही। इस शक्ति का नाम है अभावभावशक्ति।[४]

जो पर्याय जिस समय होनी है, वह पर्याय उस समय नियम से होगी ही, ऐसी भी एक शक्ति प्रत्येक द्रव्य में है जिसका नाम है, भावभावशक्ति।[५] तथा एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण जो पर्याय जिस समय नहीं होनी है, वह नियम से नहीं होगी, उस शक्ति का नाम है अभावाभावशक्ति।[६]

उक्त छह शक्तियों का स्वरूप यह सुनिश्चित सिद्ध करता है कि जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस समय, अपने उपादान के अनुसार जैसी होनी होती है; वह स्वयं नियम से उसी समय, वैसी ही होती है, उसमें पर की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं रहती।

---

१. भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः। समयसार, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९०

२. शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः। समयसार, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९०

३. भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः। समयसार, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९१

४. अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः। समयसार, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९१

५. भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः। समयसार, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९१

६. अभवत्पर्यायाभवनरूपा अभावाभावशक्तिः। समयसार, आत्मख्याति टीका, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९१

सर्वश्रेष्ठ दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम समयसार की आचार्य अमृतचंद्रकृत आत्मख्याति टीका के अंत में परिशिष्ट में समागत ४७ शक्तियों पर श्री कानजीस्वामी के विस्तृत प्रवचन 'आत्मप्रसिद्धि' नाम से हिंदी में और 'आत्मवैभव' नाम से गुजराती में प्रकाशित हुए हैं—विशेष जिज्ञासा रखनेवाले आत्मार्थी बंधुओं को अपनी जिज्ञासा वहाँ से शांत करना चाहिए। यहाँ पर उनकी विस्तृत चर्चा के लिये न तो अवकाश ही है और न वह न्यायसंगत ही है। [क्रमशः]

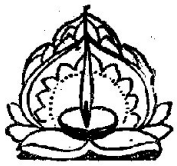

समयसार प्रवचन

वास्तव में भगवान की स्तुति क्या है?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की इकतीसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है:—

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥३१॥

जो इंद्रियों को जीतकर, आत्मा को ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक जानता है; उसे जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।

[गतांक से आगे]

द्रव्येन्द्रिय को जीतने की विधि बताकर अब भावेन्द्रिय को जीतने की विधि बताते हैं। यद्यपि द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इंद्रियों के विषयों को जीतना एक ही साथ होता है, तथापि यहाँ क्रम से कथन किया है।

भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में व्यापार से जो विषयों को खंड-खंड रूप में ग्रहण करती हैं; ऐसी भावेन्द्रियों को-प्रतीति में आती हुई अखंड एक चैतन्यशक्ति द्वारा—अपने से सर्वथा भिन्न जानना भावेन्द्रियों को जीतना है।

भावेन्द्रिय अर्थात् क्षयोपशमज्ञान। क्षयोपशमज्ञान एक-एक विषय को जानता है। जब वह एक विषय को जानने में प्रवृत्त होता है, तब अन्य विषयों को जानने में प्रवृत्त नहीं होता, इसलिए क्षयोपशम ज्ञान खंड-खंडरूप है। आत्मा सबको एक साथ जानने के स्वभाववाला है, अत: अखंड ज्ञानस्वरूप है। खंड-खंड ज्ञान आत्मा का स्वरूप नहीं है, अपूर्ण ज्ञान आत्मा का स्वरूप नहीं; आत्मा तो परिपूर्ण अखंड ज्ञानस्वभावी है।

पूर्ण द्रव्यस्वभाव और अपूर्ण पर्यायस्वभाव—दोनों का यथार्थ ज्ञान हुए बिना परमार्थस्वरूप में प्रवेश नहीं हो सकता। पूर्ण स्वभाव की प्रतीति बिना सम्यक्श्रद्धा नहीं हो सकती और वर्तमान अपूर्ण दशा का ज्ञान किये बिना परमार्थस्वरूप का लक्ष्य नहीं किया जा सकता। परिपूर्ण स्वभाव को जाननेवाला ज्ञान निश्चयनय है तथा अपूर्ण पर्याय को जाननेवाला ज्ञान व्यवहारनय है। यदि पर्याय से दृष्टि हटाकर निश्चयस्वरूप पर दृष्टि करे तो अवस्था का ज्ञान व्यवहारनय है। व्यवहार को जाने बिना परमार्थ सच्चा नहीं होता और निश्चय की श्रद्धा बिना व्यवहार सच्चा नहीं होता। निश्चय और व्यवहार दोनों साथ ही होते हैं।

अपूर्ण ज्ञानदशारूप व्यवहार को जानकर, पूर्ण स्वभाव की प्रतीतिरूप निश्चय के बल से उनका निषेध करना ही भावेन्द्रियों को जीतने की विधि है। भावेन्द्रियों को जीतना—यह कथन नास्ति से है; अस्तिस्वरूप से विचार किया जाये तो ज्ञानस्वभावी आत्मा को पहचान कर उसमें लीन होना ही भगवान की सच्ची स्तुति है।

ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष का परिहार करने से ही भगवान की सच्ची स्तुति हो सकती है। ज्ञेय और ज्ञायक को या स्व और पर को एकमेक मानना ही ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष है। ज्ञायकस्वरूप आत्मा को शरीरादि परवस्तुओं तथा पुण्य-पापरूप विकारी भावों से एकरूप मानना ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष है। यही मिथ्यादर्शन है, जिसे आत्मा की सच्ची समझ करके ही दूर किया जा सकता है।

'मैं खंड-खंडज्ञानयप नहीं, अपितु अखंडज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसी प्रतीति के लिए परपदार्थ की आवश्यकता नहीं होती। आत्मा के अवलंबन से ही ऐसी प्रतीति होती है।

सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन दोनों आत्मा के श्रद्धा गुण की पर्यायें हैं। श्रद्धा गुण त्रिकाल रहता है और उसकी विकारी या अविकारी पर्यायें नई-नई प्रगट होती हैं। आत्मवस्तु त्रिकाल है, उसमें अनंतगुण त्रिकाल हैं, तथा प्रत्येक गुण की नई-नई पर्यायें प्रगट होती हैं।

द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप समझना जैनदर्शन की इकाई है। इसे समझे बिना जैनदर्शन का मर्म नहीं समझा जा सकता। 'मेरी ज्ञानपर्याय इंद्रियादि पर-पदार्थों के आधीन नहीं है, बल्कि वह मेरे ज्ञान गुण की योग्यतानुसार प्रगट होती है; तथा सम्यग्दर्शन भी आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली श्रद्धा गुण की पर्याय है, वह किसी देव-शास्त्र-गुरु के आश्रय से प्रगट नहीं होता।'—इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थस्वरूप जानने पर ही स्वभाव का लक्ष्य हो सकता है।

वर्तमान पर्याय में अखंड ज्ञानस्वभाव को भूलकर खंड-खंड ज्ञान में एकत्व बुद्धि करना ही संसार है; पर्याय को अखंड ज्ञानस्वभाव के सम्मुख करना ही द्रव्यदृष्टि है। द्रव्यदृष्टि के बल से ही भावेन्द्रियों को जीतकर भगवान की सच्ची स्तुति की जाती है।

'ज्ञान आत्मा का त्रिकालीस्वभाव है, मैं परिपूर्ण अखंड ज्ञानस्वभावी हूँ; परंतु मेरी वर्तमान पर्याय में अपूर्णता है'—इसप्रकार जो वर्तमान पर्याय की अपूर्णता को स्वीकार नहीं करता, उसे व्यवहार के संबंध में स्थूल भ्रांति है, उसे अपनी पर्याय का विवेक नहीं है। जिसे पर्याय का भी विवेक नहीं है, वह द्रव्यस्वभाव को कैसे स्वीकार करेगा? यदि पहले पर्याय के अस्तित्व को स्वीकार करे तो उसका लक्ष्य छोड़कर द्रव्य-सम्मुखता प्रगट हो, किंतु जिसने अभी पर्याय को ही स्वीकार नहीं किया, वह कभी द्रव्य की ओर नहीं झुक सकता। क्या अपूर्ण दशा का खर-विषाणवत् (गधे के सींग के समान) सर्वथा अभाव है? यदि वर्तमान में अपूर्ण दशा नहीं है तो क्या इस समय तेरा द्रव्य पर्यायरहित है, या परिपूर्ण दशा विद्यमान है? द्रव्य कभी पर्यायरहित नहीं होता और यदि वर्तमान में परिपूर्ण दशा प्रगट हो तो परमानंद प्रगट होना चाहिए; परंतु अभी तो रागादिभावरूप दुःख विद्यमान है। इसलिए यह निश्चय से जानना चाहिए कि वर्तमान पर्याय अपूर्ण है, अर्थात् वर्तमान में मेरा ज्ञान खंड-खंडरूप परिणमित हो रहा है।

यदि वर्तमान अपूर्ण पर्याय को स्वीकार न करे तो उसका व्यवहार मिथ्या है, और अपूर्ण दशा को ही अपना स्वरूप मान ले और परिपूर्ण स्वभाव की श्रद्धा न करे तो उसका निश्चय मिथ्या है।

अपूर्ण दशा को स्वीकार करने के बाद, 'उस अपूर्णदशा को जाननेवाला ज्ञान भी मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो परिपूर्ण अखंडज्ञानस्वभावी हूँ'—इसप्रकार स्वभाव की यथार्थ श्रद्धा के साथ ही सच्चा ज्ञान होता है। सच्चा ज्ञान निश्चय और व्यवहार दोनों को जानता है। वह परिपूर्ण स्वभाव और अपूर्ण पर्याय दोनों को यथार्थ जानकर, पूर्ण स्वभाव की श्रद्धा के बल से अपूर्ण दशा का निषेध करता हुआ स्वभाव में एकाग्रता द्वारा अपूर्ण दशा का अभाव करके पूर्ण दशा प्रगट करता है। यही भावेन्द्रियों को जीतकर केवली भगवान की सच्ची स्तुति की विधि है।

जो द्रव्य-गुण-पर्याय को भी नहीं जानता, वह जैनदर्शन के व्यवहार तक भी नहीं पहुँच सका है। यदि अपूर्ण पर्याय को नहीं मानेगा तो उसे दूर कैसे करेगा? अतः अपूर्ण पर्याय को स्वीकार कर; परंतु इतने मात्र से धर्म नहीं हो जाएगा। धर्म तो खंड-खंड ज्ञानरूप भावेन्द्रिय और अखंड ज्ञानस्वभाव के बीच भेदज्ञान करके अखंड स्वभाव के अवलंबन से ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष दूर करने से होता है।

यहाँ तो खंड-खंड ज्ञान को ही अपना पूर्ण स्वरूप माननेवाले जीव को अखंडस्वभाव के अवलंबन से भावेन्द्रिय को जीतकर केवली की सच्ची स्तुति करने की विधि बता रहे हैं। अखंड चैतन्यशक्ति के अवलंबन से भावेन्द्रियों से भेद-विज्ञान होता है। प्रतीति में आनेवाला अखंड चैतन्यस्वभाव परमार्थ है तथा भावेन्द्रियों से भिन्न अखंड स्वभाव को जाननेवाली पर्याय व्यवहार है।

यहाँ प्रत्येक गाथा में निश्चय-व्यवहार की संधि पायी जाती है। प्रत्येक गाथा में निश्चय-व्यवहार दोनों बताकर बाद में व्यवहार का निषेध किया है। 'परमार्थ एकरूप सत् ही तू है, तथा जो व्यवहार बताया गया है, वह तेरा स्वरूप नहीं है'—इसप्रकार विवेक जागृत किया है। खंड-खंड ज्ञान का लक्ष्य छोड़कर अखंड स्वभाव को लक्ष्य में लेना ही भावेन्द्रिय विजय है।

यहाँ ज्ञान की अपूर्णदशा से भिन्न अखंड ज्ञानस्वभाव को जानने की बात चल रही है, किंतु ज्ञान की अपूर्णदशा उससमय आत्मा से अलग नहीं की जा सकती। यह अपूर्णदशा स्वभाव के कारण उत्पन्न नहीं होती, अपितु पर-निमित्त में युक्त होने से उत्पन्न होती है—इसलिये 'वर्तमान में अपूर्ण परिणमन होते हुए भी वह मेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं है, मैं तो अखंड ज्ञानस्वभावी हूँ'—इसप्रकार खंड-खंड ज्ञान से भिन्न अखंड स्वभाव को लक्ष्य में लेना ही भावेन्द्रिय को जीतना है।

अब, इंदियों के विषयभूत पदार्थों से आत्मा की भिन्नता बताते हैं।

ग्राह्य-ग्राहक लक्षणवाले संबंध की निकटता के कारण अपने संवेदन के साथ परस्पर एक जैसे दिखायी देनेवाले भावेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये गये इंद्रियों के विषयभूत स्पर्शादि पदार्थों को स्वयमेव अनुभव में आनेवाली चैतन्यशक्ति की असंगता के बल से अपने से सर्वथा अलग करना, इंद्रियों के विषयभूत पदार्थों को जीतना हुआ।

ग्राह्य=जाननेयोग्य पदार्थ, ग्राहक=जाननेवाला ज्ञान। ग्राह्य-ग्राहक कहकर आत्मा और पर-वस्तुओं का अस्तित्व सिद्ध किया है। एक आत्मा को सर्वव्यापी और जगत को मिथ्या मानना अज्ञान है। जगत में अनंत आत्माऐं हैं, अनंत पुद्गल परमाणु हैं, संसार है, मोक्ष है—इसप्रकार सभी का अस्तित्व स्वीकार करना चाहिये।

आत्मा एवं अन्य समस्त पर-पदार्थों में ग्राह्य-ग्राहक अथवा ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है। पर-पदार्थों के लक्ष्य से राग उत्पन्न होता है तथा आत्मा के लक्ष्य से राग नहीं होता, इसलिये आत्मा के स्वरूप में राग नहीं है—इसप्रकार परमार्थ से राग भी ज्ञेय है, आत्मा राग को जाननेवाला है।

ज्ञेय-ज्ञायक संबंध की निकटता के कारण आत्मा और पर-पदार्थ एक से दिखाई देते हैं। परंतु ऐसे निकट संबंध के होते हुए भी ज्ञेय पदार्थों के कारण ज्ञान नहीं होता।

अज्ञानी जीव ज्ञेय-ज्ञायक के निकट संबंध को यथार्थ न समझकर ज्ञेय से ही ज्ञान की उत्पत्ति मान लेता है। यहाँ ज्ञेय-ज्ञायक की भिन्नता समझाते हैं कि भाई! तेरा ज्ञान अपनी योग्यता से स्वयं ही ज्ञेयों को जानता है। ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात होता है, ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक का निकट संबंध है, किंतु कर्ता-कर्म संबंध नहीं है; अतः अपने ज्ञानस्वभाव को समस्त पदार्थों से भिन्न जानना चाहिये।

जैसे केवलज्ञान ज्ञेय के आधार से लोकालोक को नहीं जानता; उसीप्रकार छद्मस्थ का श्रुतज्ञान भी पर के आधार से नहीं जानता। ज्ञेय-ज्ञायक के निकट संबंध मात्र से ही ज्ञेय-ज्ञायक की एकत्व बुद्धिरूप भूल नहीं हो जाती; अन्यथा केवली भगवान तो लोकालोक को जानते हैं, उन्हें भी अनंत पदार्थों में एकत्वबुद्धि हो जायेगी। इसलिए ज्ञान में ज्ञेय प्रतिभासित होना भूल नहीं; ज्ञेयों के प्रतिभासन काल में ज्ञान को ज्ञेयरूप मान लेना और ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात हुआ, इसलिए राग-द्वेष हुए—ऐसा मानना भूल है।

ज्ञान और ज्ञेय दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं, अपने स्वतंत्र कारण से हैं, किसी को किसी की अपेक्षा नहीं है। ज्ञेय-ज्ञायक की निकटता का व्यावहारिक संबंध भी पर्याय में है। द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कोई संबंध नहीं है। स्व और पर एक नहीं हैं, किंतु अज्ञानी को एक से भासित होते हैं। स्व-पर की भिन्नता को जानने से अज्ञान दूर हो जाता है।

अच्छे मिष्ठान्न को देखकर उसे खाने का राग होता है, परंतु मिष्ठान्न का ज्ञान राग का कारण नहीं है। ज्ञान में मिष्ठान्न और राग—दोनों ज्ञेय हैं। ज्ञान, राग, और मिष्ठान्न तीनों अलग-अलग हैं। तीनों में कोई भी एक-दूसरे का कारण नहीं है। मिष्ठान्न है, इसलिए राग हुआ—ऐसा नहीं है। मिष्ठान्न के कारण मिष्ठान्न का ज्ञान हुआ—ऐसा भी नहीं है। इसीप्रकार मिष्ठान्न संबंधी राग का ज्ञान भी राग के कारण नहीं हुआ। ज्ञान की स्वच्छता में स्वयं ही राग और मिष्ठान्न ज्ञात होते हैं।

यहाँ आचार्यदेव ने राग और ज्ञान के बीच में सूक्ष्म भेदज्ञान कराया है। आत्मा में जिसप्रकार का क्षयोपशम होता है, तदनुकूल ज्ञेय स्वयं विद्यमान होता ही है। जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है, उसे यह खबर नहीं है कि ज्ञेय को जाननेवाला ज्ञान आत्मा में से ही प्रगट हुआ है। वह तो विद्यमान ज्ञेय को ही ज्ञान का कारण मान लेता है, किंतु स्वयमेव अनुभव में आनेवाले असंगभाव के द्वारा ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता स्पष्ट भासित होती है। असंगस्वभावी चैतन्यशक्ति अपने स्वभाव से ही ज्ञेय को जानती है, पर के कारण नहीं जानती।

प्रश्न :- यदि आप कहेंगे कि ज्ञेय के कारण ज्ञान नहीं होता तो कोई सत्शास्त्रों का बहुमान नहीं करेगा, क्योंकि शास्त्र के कारण तो ज्ञान होता नहीं है ?

उत्तर :- सत्य समझनेवाले को ही सत्य समझने के निमित्तों के प्रति सच्चा बहुमान होता है। यद्यपि शास्त्र के कारण ज्ञान नहीं होता, तथापि जब जीव स्वयं सत्य समझता है तब सत्शास्त्रादि निमित्तरूप में होते ही हैं। जब निमित्त से लक्ष्य हटाकर स्वलक्ष्य करने से सत्य समझ में आया, तभी पर-वस्तु में निमित्त का उपचार किया जाता है।

परमार्थ से तो देव-गुरु-शास्त्र के बहुमान में स्वयं को उत्पन्न हुई सत्समझ का ही बहुमान है, देव-गुरु-शास्त्रादि का नहीं। अभी पूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं हुई, इसलिए सत्समझ होने पर सत्समझ के निमित्तों का बहुमान आये बिना नहीं रहता। किंतु जो जीव देव-शास्त्र-गुरु के कारण ही सत्समझ होना मानता है, वह तो उनकी आज्ञा का अनादर करता

है, अपने स्वाधीन ज्ञानस्वभाव की अपनी मान्यता में हिंसा करता है; क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र ही यह बताते हैं कि तेरा ज्ञान तेरे स्वभाव में से प्रगट होता है, पर के कारण प्रगट नहीं होता।

ज्ञान पंचेन्द्रिय-विषयों में लग गया—ऐसा कहा जाता है; ज्ञान का विषय जड़पदार्थ नहीं बनते। जड़वस्तु में ज्ञान नहीं रुकता, किंतु परपदार्थों को जानने पर स्वयं रागभाव उत्पन्न होता है और ज्ञान उसमें अटक जाता है। ज्ञातविषय में राग करके अटक जाना—यही ज्ञान का विषय है। आत्मा में एकाग्र न होकर पर में एकाग्र होना ही ज्ञान का विषय है। राग और उसके निमित्त परपदार्थ को एक करके 'इंद्रिय-विषय' कहा है। एक ओर मात्र ज्ञानस्वभाव है और दूसरी ओर उससे भिन्न समस्त पदार्थ ज्ञेय हैं। दोनों का यथार्थ ज्ञान करके आत्मा में ही लीन होने से इंद्रिय के विषयों पर विजय होती है।

इंद्रियों के विषयभूत पदार्थों का लक्ष्य करने से राग का अनुभव होता है, किंतु विषयों से भिन्न ज्ञानस्वभाव का लक्ष्य करने से चैतन्य की असंगता स्वयमेव अनुभव में आती है। ज्ञानस्वभाव राग में या पर में नहीं मिल जाता, इसलिए ज्ञानस्वभाव असंग है। वास्तव में ज्ञान रागादि या परपदार्थों को नहीं, अपितु स्वयं अपनी ज्ञानदशा को ही जानता है। ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करने से परपदार्थ स्वयमेव ज्ञात हो जाते हैं।

ज्ञान परपदार्थों से भिन्न ही है—इसप्रकार स्वयमेव अनुभवगम्य असंगता की श्रद्धा द्वारा इंद्रियों के विषयभूत परद्रव्यों को अपने से जुदा किया जाता है। असंग चैतन्यस्वरूप का अनुभव करने से परद्रव्यों और राग का लक्ष्य छूट जाना ही जितेन्द्रियता है। असंग चैतन्यस्वभाव और पदार्थों को एक मानना संकरदोष है। चैतन्यस्वभाव के लक्ष्य से संकरदोष का परिहार करना ही भगवान की सच्ची स्तुति है।

यहाँ भगवान की सच्ची स्तुति के तीन प्रकार कहे गये हैं। 'मैं अखंड चैतन्यस्वरूप आत्मा जड़-इंद्रियों से भिन्न हूँ'—ऐसा जानना द्रव्येन्द्रियों को जीतना है। 'मैं खंड-खंड ज्ञान से भिन्न अखंडज्ञान स्वभावी हूँ'—ऐसा जानना भावेन्द्रियों को जीतना है। इसीप्रकार 'अपने को समस्त ज्ञेय पदार्थों से भिन्न असंगस्वभावी अनुभव करना' इंद्रियों के विषयभूत पदार्थों को जीतना है।

अंतरंग स्वभाव पर दृष्टि देते ही एक साथ तीनों प्रकार से भगवान की स्तुति हो जाती है।

प्रश्न :- पर से भिन्न आत्मा को जानने में भगवान का नाम तो कहीं आता नहीं है, फिर उसे भगवान की स्तुति कैसे कहते हो ?

उत्तर :- यहाँ भगवान की निश्चयस्तुति की बात है। निश्चय से अपने लिए अपना आत्मा ही भगवान है, इसलिए अपने पूर्ण स्वभाव की प्रतीति करना ही निश्चय से भगवान की स्तुति है। पर की स्तुति तो शुभराग है, उसे व्यवहार से स्तुति कहते हैं।

यहाँ टीका में द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इंद्रिय के विषयभूत पदार्थों को जीतने की बात क्रमशः कही गयी है, परंतु इन तीनों के जीतने में कोई क्रम नहीं होता। स्वभाव-सन्मुख होते ही एकसाथ तीनों का जीतना हो जाता है। जीतने से आशय उन पदार्थों को दूर ढकेल देने से या उनमें कोई परिवर्तन करने से नहीं है। उनसे लक्ष्य हटाकर आत्मा का लक्ष्य करना ही उनको जीतना है। अतीन्द्रिय आत्मा का लक्ष्य करते ही इंद्रियों का लक्ष्य छूट जाता है, और यही इंद्रिय विजय है। पर-सम्मुखता में द्रव्येन्द्रियादि तीनों का अवलंबन एक साथ आ जाता है; तथा स्व-सम्मुखता में एक साथ तीनों का अवलंबन छूट जाता है। शरीर, क्षयोपशमज्ञान और पर-पदार्थों से भिन्न अशरीरी अखंड ज्ञानस्वरूप आत्मा की प्रतीति करना ही अनंत तीर्थंकरों की सच्ची स्तुति है।

पर को जाननेवाला क्षयोपशमज्ञान आत्मा को विषय नहीं बना सकता, और जो ज्ञान आत्मा को नहीं जानता वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। पर्याय में अल्पज्ञान होने पर भी यदि वह पूर्ण स्वभाव की ओर ढले तो वह आत्मा का ज्ञाता होने से आत्मा का ही है। स्वभाव-सम्मुख ज्ञान आत्मा में तन्मय होने से अखंड ही है; पर को जाननेवाला ज्ञान खंड-खंड रूप होने से आत्मा का स्वरूप नहीं है। सम्यग्दर्शन का विषय अखंड सामान्य स्वभाव होने से खंड-खंड ज्ञान को आत्मा का स्वरूप नहीं कहा गया।

वास्तव में तो पर को जाननेवाला क्षयोपशम ज्ञान भी आत्मा के ज्ञानस्वभाव का ही विशेष है, आत्मा की ही पर्याय है; परंतु सम्यग्दर्शन का विषय परिपूर्ण-सामान्य ही है, विशेष पर्यायें सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है; इसलिए आत्मा में ही उत्पन्न होनेवाली क्षयोपशमिक ज्ञानपर्याय को आत्मा से भिन्न कहा है। जब सम्यग्दर्शन परिपूर्ण-सामान्य को विषय बनाता है उस समय ज्ञान भी पर्याय को गौण करके सामान्य स्वभाव-सम्मुख होता हुआ सम्यक्‌रूप परिणमित होता हुआ सामान्य और विशेष दोनों को जानता है। पूर्ण वीतरागी स्वभाव में एकत्वबुद्धि होने से ज्ञानी अल्पज्ञता और राग को अपना स्वरूप नहीं मानते इसलिए चतुर्थ गुणस्थान में ही उन्हें 'जिन' कहा है।

जड़-इंद्रियाँ तो अचेतन हैं ही, साथ ही परसन्मुख खंड-खंड ज्ञान भी अचेतन है; क्योंकि पर को जानने में रुका हुआ ज्ञान चैतन्य के विकास को रोकता है। पर को जानते-जानते केवलज्ञान नहीं होता, किंतु निज को जानते-जानते केवलज्ञान होता है। जिस ज्ञान का एकत्व चैतन्य के साथ नहीं है, उस ज्ञान को चैतन्य कैसे कहा जा सकता है ? इसलिए ज्ञानी खंड-खंड ज्ञान को भी अखंड चैतन्य से भिन्न अनुभव करते हैं।

केवलज्ञान उत्पन्न होने में इंद्रियों की शिथिलता तो बाधक नहीं, परंतु क्षयोपशम की अल्पता भी बाधक नहीं है। अल्प क्षयोपशम केवलज्ञान में बाधक नहीं होता और अधिक क्षयोपशम केवलज्ञान में साधक नहीं है। ज्ञानस्वभाव में दृष्टि जाते ही बाह्यपदार्थों को जानने की वृत्ति छूट जाती है अर्थात् भावेन्द्रियों की महिमा भी नहीं रहती।

अब आचार्यदेव निश्चयस्तुति के फल का वर्णन करते हुए कहते हैं—इसप्रकार जो ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष दूर होने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण, विश्व के ऊपर तिरते हुए, प्रत्यक्ष उद्योतपने से अंतरंग में सदा प्रकाशमान, अविनश्वर, स्वत:सिद्ध परमार्थरूप भगवान ज्ञानस्वभाव द्वारा अन्य द्रव्यों से परमार्थतया भिन्न ज्ञानस्वभाव का अनुभव करते हैं, वे निश्चय से जितेन्द्रिय 'जिन' हैं।

यहाँ आचार्यदेव ने सम्यग्दृष्टि को निश्चय से 'जिन' कहा है। जिन्हें सम्यग्दर्शन हुआ है वे अल्पकाल में ही अवश्य 'जिन' होंगे। जिन्होंने जिनेन्द्रदेव के समान अपने आत्मस्वभाव की प्रतीति कर ली है; श्रद्धा की अपेक्षा वे अभी ही 'जिन' हो गये हैं। जगत को सम्यग्दर्शन की महिमा ज्ञात नहीं है। जिसने श्रद्धा में परिपूर्ण अखंड ध्रुव ज्ञायक स्वभाव की प्रतीति की उसे अल्पकाल में पूर्णदशा अवश्य प्रगट होगी।

ज्ञानस्वभाव स्वयं ही भगवान है। ज्ञानस्वभाव अल्पज्ञता, राग और पर-संग से रहित है। भगवान के समान ज्ञान भी भवरहित एवं लोकालोक को जानने की पूर्णसामर्थ्य से युक्त है।

ज्ञानस्वभाव की प्रतीतिवान को भव की शंका नहीं होती। ज्ञानस्वभाव विकार से भिन्न रहता हुआ विकार का भी ज्ञाता है। समस्त ज्ञेयों को उनसे भिन्न रहकर जाननेवाला ज्ञान विश्व के ऊपर ही तिरता हुआ स्पष्ट ज्ञात होता है अर्थात् विश्व को जानते हुए विश्वरूप नहीं होता।

ज्ञानस्वभाव प्रत्यक्ष उद्योतपने से अंतरंग में स्पष्ट प्रकाशमान है। पहले ज्ञान सदा पर-

सम्मुख रहता था, किंतु अब अपने को जानता हुआ प्रत्यक्ष उद्योतमान है। इंद्रियज्ञान पर-सम्मुख होने से पर को ही प्रकाशित करता है, किंतु स्वभाव-सम्मुख ज्ञान स्व को प्रकाशित करता हुआ सदा अंतरंग में प्रकाशमान है।

ज्ञानस्वभाव त्रिकाल स्वत:सिद्ध और अविनाशी है। ज्ञेयों के कारण ज्ञान की सत्ता नहीं है, किंतु वह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है। पर्याय तो क्षणिक है, मोक्षमार्ग एवं मोक्षरूप पर्यायें भी नाशवान हैं; परंतु ज्ञानस्वभाव तो त्रिकाल नित्य अविनाशी है।

अंतरंग में प्रकाशमान, त्रिकाल स्वत:सिद्ध, अविनाशी भगवान ज्ञानस्वभाव ही परमार्थरूप है। ऐसे ज्ञानस्वभाव का अनुभव करनेवाले ज्ञानी जीव निश्चय से जितेन्द्रिय जिन हैं।

इस गाथा में वर्णित स्तुति चतुर्थगुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के होती है। सभी सम्यग्दृष्टियों के ऐसी स्तुति होती है।

इसप्रकार एक निश्चयस्तुति तो यह हुई। इससे उच्च स्तर की स्तुतियाँ मुनि की भूमिका में होती हैं, उनका वर्णन बत्तीसवीं और तेतीसवीं गाथा में करेंगे।

यह जीव अज्ञानभाव से स्व-पर को एकरूप मानकर पर की स्तुति करता था, राग को ही अपना स्वरूप मानकर राग की स्तुति करता था, तथा अपने को खंड-खंड ज्ञानरूप मानकर क्षयोपशमज्ञान की स्तुति करता था; परंतु अब इकतीसवीं गाथा में बतायी गयी विधि के अनुसार रंग, राग और भेद से भिन्न अरूपी वीतरागी और अखंड स्वभावी आत्मा का अनुभव करता हुआ वास्तविक स्तुति करता है। ऐसी निश्चयस्तुति करनेवाले जीव केवली भगवान के लघुनंदन हैं।

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

और कैसा है यह आत्मा?

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की ४५ व ४६वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोकों पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथायें इसप्रकार हैं :—

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणओसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति॥४५॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥४६॥

वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि पर्यायें, संस्थान और संहनन—यह सभी इस जीव में नहीं हैं।

जीव को अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतनागुणवाला, अशब्द, अलिंगग्रहण (लिंग से अग्राह्य), और जिसे कोई संस्थान नहीं कहा—ऐसा जान।

सम्यग्दर्शन का ध्येय शुद्धस्वभाव है। आत्मा के शुद्धस्वभाव में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नहीं हैं; स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि अवस्थायें, भिन्न-भिन्न संस्थान अर्थात् आकार और संहनन अर्थात् शरीर की पुष्टता इत्यादि शुद्धचैतन्यद्रव्य में नहीं हैं।

जीव में रूप, रस, गंध, स्पर्शादि गुण नहीं है, किंतु वह ज्ञानस्वरूप है। शुद्ध आत्मा में शब्द नहीं, तथा वह किसी बाह्य चिह्न, शरीर की नग्नावस्था आदि से पकड़ में आये—ऐसा नहीं है, उसके कोई संस्थान भी नहीं है, ऐसा शुद्ध आत्मा तू जान!

नियमसार की यह गाथा ४६, प्रवचनसार गाथा १७२, समयसार गाथा ४९, पंचास्तिकाय गाथा १२७, धवल भाग ३ पृष्ठ २, भावपाहुड़ गाथा ६४, सब एक ही हैं।

विकार अथवा अपूर्ण पर्याय मोक्ष का कारण नहीं है, शुद्धस्वभाव कारणपरमात्मा एक ही मोक्ष का कारण है।

यहाँ परमस्वभावभूत कारणपरमात्मा का स्वरूप समस्त पौद्गलिक विकारसमूहरूप नहीं है—ऐसा कहा है।

एक समय के विकार से रहित शुद्धभाव को कारणपरमात्मा कहते हैं। मोक्षमार्ग और मोक्ष—यह परमस्वभावभूत नहीं। संवर, निर्जरा और मोक्ष को यहाँ परद्रव्य कहा है, क्योंकि उनके लक्ष्य से राग होता है—धर्म नहीं होता। संवर, निर्जरा और मोक्ष प्रगट होने का कारण नित्यध्रुवस्वभाव है, वह परमस्वभावभूत है, उसमें समस्त विकार का अभाव है, वह पुण्य-पाप के भाव से जानने में आये—ऐसा नहीं है। केवली अथवा सिद्ध परमात्मा की यह बात नहीं हे, किंतु जिसके आधार से केवली अथवा सिद्ध कार्यपरमात्मा प्रगटे ऐसे कारणपरमात्मा निज आत्मा की बात है।

यह स्वभाव त्रिकाल अंतर्मुख है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। पुण्य-पाप अशुद्धभाव है, स्वभाव के आश्रय से अशुद्धभाव का नाश होकर शुद्धभाव प्रगटे—उसकी भी यहाँ बात नहीं है; परंतु एकरूप अनादि-अनंत शुद्धभाव का यह अधिकार है। विकार की बुद्धि, पर्याय की बुद्धि, संवर-निर्जरा-मोक्ष की बुद्धि—यह सब पर्यायबुद्धि है और आत्मा को लाभदायक नहीं है। स्वभाव ही एकरूप त्रिकाल है, उसकी बुद्धि करना ही कल्याण का कारण है।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण; शरीर के आकार, संस्थान, संहनन, पुद्गल के भेद हैं; शुद्धजीव में वे नहीं हैं।

वास्तव में त्रिकाली आत्मा में लाल, पीले आदि वर्ण नहीं हैं। कोई-कोई अज्ञानी जीव कहते हैं कि ध्यान में पीला दिखाई देता है, वह आत्मा का साक्षात्कार है; परंतु वह भ्रम है। पीला तो रंग है, पुद्गल है, आत्मा में उसका अभाव है। आत्मा में खट्टा, मीठा आदि रस नहीं; कितने ही लोग सुधारस को आत्मा का रस कहते हैं, किंतु भाई! वह तो जड़ का रस है, चैतन्यस्वभाव में वह रस नहीं है। शुद्ध आत्मा में सुगंध-दुर्गंध नहीं। स्त्री-पुरुष-नपुंसक आदि शरीर के आकार भी आत्मा में नहीं हैं। समचतुरस्त्र आदि संस्थान, वज्रर्षभनाराचादि संहनन आत्मा में नहीं—यह सब पुद्गल के हैं।

एकेन्द्रिय जीवों को मुख्यपने कर्मफलचेतना है, अकेले दुःख का अनुभव कर रहे हैं।

संसार अवस्था में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है। मूल गाथा में 'चेदणागुणम्' शब्द है; उसमें से एकेन्द्रिय जीव को कर्मफलचेतना है, त्रस जीव को

कार्यसहित कर्मफलचेतना है और कार्यपरमात्मा को तथा कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना है—इस तरह तीन प्रकार का अर्थ टीका में किया है।

एकेन्द्रिय-स्थावर जीव को कर्मफलचेतना है। कन्दमूलादि के जीव अपने शुद्धचैतन्यस्वभाव का भान चूक गए हैं, अतः शुद्धस्वभाव का अनुभव न करके अकेले विकारी फल का अनुभव करते हैं। निगोद का जीव शरीर को तो अनुभवता नहीं, किंतु पर को मैं भोगता हूँ—ऐसी मिथ्या मान्यता का तथा विकार का अनुभव करता है। एकेन्द्रिय जीव को विकार मैं करता हूँ—ऐसा भाव गौण है। वे तो मुख्यपने दुःख का अनुभव अथवा भोग कर रहे हैं।

त्रसजीव विकारी परिणाम के कार्यसहित हर्ष-शोक के फलरूप अनुभव करते हैं।

त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्यसहित कर्मफलचेतना होती है। दोइन्द्रिय से लगाकर पाँच इंद्रिय तक के जीव त्रस हैं, उनमें कीड़ी, मकोड़ा, नारकी, देव, मनुष्यादि आ जाते हैं। वे जीव विकारी परिणाम के कार्यसहित हर्ष-शोक का अनुभव करते हैं। अज्ञानी जीव मानता है कि खाद्य पदार्थ अथवा पैसे का भोग करता हूँ, किंतु ऐसा बनता नहीं। कोई जीव परपदार्थ को भोगता ही नहीं; किंतु परपदार्थों से मुझे सुख-दुःख है ऐसे विकारी परिणाम को करता है और हर्ष-शोक भोगता है, कार्यसहित कर्मफलचेतना को भोगता है। दया-दान करूँ अथवा अशुभभाव करूँ—ऐसे परिणाम में चित्त को लगाकर हर्ष-शोक के फल का अनुभव करता है।

इसप्रकार कर्मफलचेतना और कार्यसहित कर्मफलचेतना, दोनों अधर्मफल और संसार हैं।

सिद्ध तथा केवली भगवंतों को केवलज्ञानरूपी पूर्ण कार्यशुद्धचेतना प्रगटी है।

कार्यपरमात्मा तथा कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। आत्मा शुद्ध चिदानंदस्वरूप है—ऐसे कारणपरमात्मा का आश्रय करके, उसमें विशेष स्थिरता करके अपने में केवलज्ञान, केवलदर्शनादि दशा प्रगट की, उसे कार्यपरमात्मा कहते हैं। वह कार्यपरमात्मा केवली और सिद्ध हैं। ऊपर मिथ्यादृष्टि जीवों की बात करने के बाद, आत्मा का भान करके जो कार्य को अभी साध रहे हैं—ऐसे साधकों की बात नहीं ली। साधक को ज्ञानचेतना होती है, परंतु आंशिक विकार और अपूर्णता है, अतः परिपूर्ण ज्ञानचेतना नहीं होती, इसलिये साधक की

चर्चा यहाँ गौण की है। यहाँ तो पूर्ण कार्यरूप ज्ञानचेतना प्रगट की है—ऐसे केवली तथा सिद्धभगवान की बात ली है। केवली तथा सिद्धों को कारणशक्तिरूपज्ञानचेतना थी, उसमें से कार्य प्रगट हो गया है, उन्हें अकेले ज्ञान का अनुभव है।

अभव्य तथा निगोद से लगाकर सिद्ध तक सभी जीवों को कारणशुद्ध-ज्ञानचेतना होती है।

अब कारणपरमात्मा के भी शुद्धज्ञानचेतना होती है। उसकी स्पष्टता:—

कारणपरमात्मा अर्थात् शक्तिरूप शुद्धस्वभाव निगोद से लगाकर सिद्ध तक के जीवों में एकरूप पड़ा है। त्रिकाल एकरूप भगवान को कर्मचेतना नहीं, कर्मफलचेतना नहीं तथा अपूर्ण शुद्धज्ञानचेतना भी नहीं, किंतु शुद्धज्ञानचेतना उत्पाद-व्यय रहित एकरूप सभी जीवों के होती है। तुम्हें धर्म और आनंद प्रगट करना है तो आत्मा में ज्ञान और आनंद एकरूप पड़े हैं, उनका अवलंबन लो।

जो पदार्थ होता है, वह क्या किसी के कारण होता है अथवा क्या एकसमयमात्र के लिए होता है? नहीं, आत्मपदार्थ किसी के कारण नहीं तथा आदि-अंत रहित हैं। शुद्ध चैतन्यस्वभाव में शुद्धज्ञानचेतना है, गुण तो त्रिकाल है।

यहाँ उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव एकरूपपर्याय शुद्धज्ञानचेतना जो त्रिकाल पड़ी है—उसकी बात चल रही है। उसके आधार से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा अथवा कार्यशुद्ध-ज्ञानचेतना प्रगट होती है। निगोद के जीव, मिथ्यादृष्टि जीव तथा अभव्य जीवों में भी कारणशुद्धज्ञानचेतना सदा पड़ी है; उसमें फेरफार नहीं है। जिस कारण के सेवन करने से कार्य प्रगट हो वह कारणपर्याय-शुद्धज्ञानचेतना त्रिकाल एकरूप पर्याय जो कि उत्पाद-व्ययरहित है—उसकी यह बात है। मिथ्यादृष्टि जीवों को इसका भान नहीं और वे कारण का आश्रय करते नहीं, अत: उनको कार्यरूप फल प्राप्त होता नहीं।

केवली तथा सिद्ध भगवंतों को शुद्धज्ञानचेतना होने से वे फलरूप परम आनंद को भोग रहे हैं। इसीलिए कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार की सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती हैं।

कार्यसमयसार केवली तथा सिद्ध भगवंतों के परिपूर्ण ज्ञानचेतना प्रगटी है, अत: उसके फलरूप में वे निराकुल आनंद को भोगते हैं। संसारदशा में निगोद का जीव विकार के फल में

हर्ष-शोक के अनुभव में रुका है, त्रसजीव कर्मसहित हर्ष-शोक के फल को भोगते हैं। सिद्ध तथा केवली भगवान पूर्ण निराकुल आनंद भोगते हैं। केवली के शुद्धज्ञानचेतना है, इसलिए सहजफलरूप अर्थात् आनंददशा होती है। ज्ञान और आनंद का अविनाभावी संबंध बताया है। (साधक की बात गौण की है।) केवली तथा सिद्ध भगवान ज्ञानचेतना के कार्यसहित आनंद के फल को अनुभव करते हैं।

निगोद से लगाकर सिद्ध तक के सभी जीवों को त्रिकाली कारणशुद्धचेतना है, इसलिये उनमें सहज आनंद अनादि-अनंत रहता है।

अब, कारणसमयसार को भी सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। त्रिकाल कारणपरमात्मा जो निगोद से लगाकर सिद्ध तक के सभी जीव हैं, उन सभी को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। जो फल प्रगटे वह तो कार्यसमयसार के होता है, उसका कथन हो चुका। यहाँ तो त्रिकालफल, त्रिकाल आनंद एकरूप अनादि-अनंत उत्पाद-व्ययरहित सभी आत्माओं में रहता है, वह बताते हैं। कारणपरमात्मा को शुद्ध ज्ञानचेतना अनादि-अनंत एकरूप है, अतः उसके फलस्वरूप आनंददशा भी त्रिकाल एकरूप है।

कोई **प्रश्न** करे कि फल तो उत्पादपर्याय में होता है, इस त्रिकालीपर्याय में फल किस प्रकार है ?

उसका **समाधान** - भाई! जैसे शुद्धज्ञानचेतना त्रिकाली एकरूप है वैसे ही आनंद भी त्रिकाली एकरूप है। यहाँ कारणपर्याय की बात चलती है, गुण की बात नहीं है। कार्यसमयसार के जो सहजफल कहा वह सादि-अनंत है और यहाँ कारणसमयसार के जो सहजफल कहा है, वह अनादि-अनंत है। यहाँ द्रव्यदृष्टि का विषय बताते हैं। तुझे मोक्षरूपी कार्य प्रगट करके आनंद चाहिए तो त्रिकाली कारणशुद्धज्ञानचेतना की—उसके त्रिकाली फल आनंदसहित कारणपर्याय—त्रिकाल एकरूप रहनेवाली पर्यायसहितवाला कारणपरमात्मा की, जो कि अंदर भरा पड़ा है; श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता कर, इससे मोक्षदशा प्रगट होगी।

पर्यायदृष्टि से आत्मा के तीन प्रकार हैं (१) कर्मफलचेतना (२) कार्यसहित कर्मफलचेतना (३) कार्यशुद्धज्ञानचेतना।

(१) शुद्धस्वभाव से देखा जाये तो कारणपरमात्मा में शुद्धज्ञानचेतना तथा ज्ञान का आनंद अपने स्वभाव के साथ अनादि-अनंत है। ऐसा ज्ञान और आनंद तो सभी जीवों में हैं,

किंतु ऐसा जिसको भान नहीं ऐसे एकेन्द्रिय जीव अपनी ज्ञानचेतना की पर्याय को विकार के फल में रोके हुए हैं इसलिए उनको कर्मफलचेतना है।

(२) दोइंद्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव जिनको शुद्धस्वभाव का भान नहीं है, वे पर के तथा विकार के करनेरूपी कार्यसहित हर्ष-शोक के वेदन में रुके हैं, उन्हें कार्यसहित कर्मफलचेतना है।

(३) केवली तथा सिद्ध भगवान जो कार्यसमयसार हैं (साधक की बात गौण रखी है), उन्हें अपने शुद्धात्मा के अवलंबन से परिपूर्ण शुद्धता प्रगट हुई होने से शुद्धज्ञानचेतना है; उन्हें कर्मचेतना अथवा कर्मफलचेतना होती नहीं। यह चेतना प्रगटरूप शुद्ध अवस्था है।

इस तरह तीन प्रकार के आत्मा पर्यायदृष्टि से कहे हैं। फिर एक ही आत्मा में भी वे तीनों प्रकार हो सकते हैं। जब जीव एकेन्द्रिय था तब वह हर्ष-शोक के अनुभव में रुका था, जब वही जीव त्रस हुआ तब कार्यसहित हर्ष-शोक का अनुभव करने लगा, तथा वही जीव अपने आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, लीनता करके केवलज्ञान प्रगट करे तब अकेला ज्ञान रह गया उस समय शुद्धज्ञानचेतना प्रगटरूप हो गयी।

कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और प्रगटरूप शुद्धज्ञानचेतना, यह तीनों ही व्यवहारनय के विषय हैं। अनादि-अनंत (कारण) शुद्धज्ञानचेतना निश्चयनय का विषय है।

केवली भगवान को तथा सिद्धों को सादि-अनंतकाल रहनेवाली शुद्धज्ञानचेतना प्रगट हुई है, वह व्यवहारनय का विषय है। वह विषय जाननेयोग्य तो है किंतु अवलंबन करने योग्य नहीं है। कारणपरमात्मा के शुद्धज्ञानचेतना है और आनंद फलरूप चेतना है। यह दोनों चेतना अनादि-अनंत हैं तथा निगोद से लेकर सिद्धों तक समस्त जीवों के है। उत्पाद-व्ययरहित ध्रुवसामान्य के साथ विशेष पर्याय अनादि-अनंत एकरूप रहती है। आत्मा ज्ञान-आनंद की ध्रुवशक्ति से भरपूर है। उसके साथ उसकी विशेष जो ज्ञानचेतना तथा ज्ञान के फलरूप आनंद चेतना है, वह अनादि-अनंत है। इसप्रकार सामान्य और विशेष होकर वह संपूर्ण कारणपरमात्मा पूरा होता है और वही निश्चयनय का विषय है। वही रत्नत्रय और केवलज्ञान प्रगट होने का कारण है।

सिद्धों और केवलियों के ज्ञानचेतना सादि-अनंत है तथा सभी जीवों को (कारणपरमात्मा को) शुद्धज्ञानचेतना अनादि-अनंत है।

कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। सिद्ध और केवली कार्यपरमात्मा हैं—उन्हें केवलज्ञानादि पर्यायें प्रगट होती हैं, वे सादि-अनंत काल रहेंगी। भगवान मोक्ष पधारे और गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्रगट हुआ वह कार्य कहलाता है और वे कार्यपरमात्मा हैं। साधक को आंशिक शुद्धज्ञानचेतना प्रगटी है, परंतु उसे गौण रखा है और पूर्ण शुद्धपर्याय प्रगट होनेवाले कार्यपरमात्मा को यहाँ लिया है। निगोद से लेकर सिद्ध तक के सभी जीव कारणपरमात्मा हैं, उनके शुद्धज्ञानचेतना अनादि-अनंत है, उसमें कर्म के निमित्त की अथवा अशुद्धता की अपेक्षा नहीं है। उसके ही अवलंबन से सम्यग्दर्शन, चारित्र, शुक्लध्यान और केवलज्ञान प्रगट होता है।

सिद्धों तथा केवलियों के ज्ञान परिपूर्ण प्रगट है, इसलिए उसके फलरूप में परिपूर्ण आनंद प्रगट हो गया है; इसीलिए कार्यसमयसार और कारणसमयसार को सहज फलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।

यहाँ 'इसीलिए' शब्द पर विशेष भार दिया है। कार्यपरमात्मा तथा कारणपरमात्मा के शुद्धज्ञानचेतना होती है, इसीलिए उनके सहज फलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। एकेन्द्रिय तथा त्रस जीव के हर्ष-शोक का वेदन है, इसलिए उन्हें आनंद चेतनारूपी फल नहीं है। त्रस जीवों को दया-दानादि की वृत्ति उठती है, वह उन्हें विकार की एकाग्रता का वेदन है, अतः उन्हें शुद्धज्ञानचेतना कार्यरूप नहीं है और फलरूप आनंद का वेदन नहीं है।

जो आत्मा अपनी त्रिकाली शक्ति के अवलंबन से शुद्धचेतना को कार्यरूप में प्रगट करता है, उसको आनंद का फल होता है। केवली तथा सिद्धों को आनंदचेतना प्रगटी है, उसका अनुभव है। चेतना अर्थात् एकाग्र होना, अनुभव करना; अपने ज्ञानस्वभाव में एकाग्र हुए वे ही निराकुल आनंद का अनुभव करते हैं, उन्हीं को कार्यसमयसार कहो, कार्यशुद्धजीव कहो, व्यक्त शुद्धपर्याय कहो, वह सब एक ही है।

सभी जीवों के कारणरूप शुद्धज्ञानचेतना है, अतः आनंदचेतना भी है। दोनों अनादि-अनंत हैं।

कारणसमयसार अर्थात् त्रिकाली शक्तिरूप शुद्ध आत्मा निगोद से लगाकर सभी जीव हैं, उन सभी को शुद्धचेतना है, अतः सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना अर्थात् आनंद भी है। यहाँ प्रगट आनंद की बात नहीं है, किंतु अनादि-अनंत सहज एकरूप रहनेवाले आनंद की बात है।

[शेष अगले अंक में]

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

जो जीवादि द्रव्यों को अवकाशदान के योग्य है, उसे जिनमतानुसार आकाशद्रव्य जानना चाहिए। यह आकाशद्रव्य लोकाकाश और अलोकाकाश के भेद से दो प्रकार का है।

इस जगत में छह द्रव्य हैं, वे अपने-अपने स्वरूप की अपेक्षा सत् और परस्वरूप की अपेक्षा असत् हैं। यहाँ आकाशद्रव्य की बात करते हैं। आकाश लोकालोक में व्यापक है और जीवादि द्रव्यों को अवकाश देता है अर्थात् जहाँ पाँच द्रव्य स्वयं रहते हैं, वहाँ आकाशद्रव्य निमित्त है। आकाशद्रव्य के दो भेद हैं (१) लोकाकाश, (२) अलोकाकाश।

जीवादि द्रव्यों को अवकाश देने की जिसमें योग्यता है, उसे जिनेन्द्र भगवान आकाशद्रव्य कहते हैं। उसका अंत नहीं है, अनंत विस्तृत क्षेत्र में भी ज्ञान को ले जायें तो कहीं भी अंत नहीं आता है, अतः आकाश अनंतप्रदेशी है। यह ज्ञान आकाश को नहीं है, परंतु आत्मा उसे जानता है। आत्मा तो ज्ञानस्वभावी है, वर्तमान पर्याय में राग में अटका होने से अल्पज्ञता है, परंतु निजस्वभाव के भानपूर्वक केवलज्ञान प्रगट करे तो केवलज्ञान-पर्याय में संपूर्ण आकाश प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

संपूर्ण लोकालोक अनंत द्रव्यों से युक्त है। जगत में अकेला आकाशद्रव्य ही नहीं है, अन्य भी अनंतानंत द्रव्य हैं। उन सभी को द्रव्य-गुण-पर्याय से एकसमय में युगपत् जानने की सामर्थ्य केवलज्ञान में है। अनंत द्रव्यों में आकाशद्रव्य एक तथा अपरिमित है। इससे उसका माहात्म्य नहीं है; माहात्म्य तो आकाशसहित अनंत द्रव्यों को जाननेवाले केवलज्ञान का है।

'केवलज्ञान प्रगट करने की सामर्थ्यवाला ज्ञानानंद स्वभावी पदार्थ मैं हूँ'—ऐसी

प्रतीतिपूर्वक स्वसंवेदनज्ञान प्रगट करे तो आकाशसहित अनंतानंत द्रव्यों का यथार्थ ज्ञान सहज हो जाता है।

यह ऊपर जो नीला-नीला दिख रहा है, वह आकाश नहीं है, वह तो पुद्गल की पर्याय है। आकाश नीला और काला नहीं है; वह तो अरूपी है। जीवादि द्रव्यों को रहने के लिये जगह देता है, उस आकाश को ज्ञान जानता है।

अपने घर में दो सौ, पाँच सौ वस्तुएँ हों तो मैं इनका हूँ और ये मेरी हैं—ऐसी ममता करके अज्ञानी जीव अटक जाता है। उन वस्तुओं से अनंतगुनी वस्तुएँ जगत में हैं। आकाश क्षेत्र की अपेक्षा बड़ा है, परंतु संख्या में एक ही है। उसके अलावा जगत में अनंत जीव, अनंतानंत पुद्गलादि द्रव्य हैं। वे द्रव्य तेरे नहीं हैं, तू तो उनको जाननेवाला है; परंतु अज्ञानी को अपने ज्ञान की महिमा नहीं आती। अज्ञानी जीव कुछ ही चीजों को अपनी मानकर ममता करता है। तथा आकाश इतना विस्तृत और अपरिमित है—ऐसा विचार करता है। इसप्रकार परज्ञेयों की महिमा में अटक गया है। उसे अपनी ज्ञानशक्ति की महिमा नहीं आती है, फिर धर्म कहाँ से हो? आकाश अपरिमित है, उस अपरिमित आकाश और अनंत द्रव्यों का माप करनेवाला तू है—ऐसी अपने ज्ञान की महिमा ला।

सिद्ध जीव वास्तव में अपने असंख्य प्रदेशों में रहते हैं। वे स्वाभाविक तथा शुद्ध सुखरूपी अमृतरस का आस्वादन करने से परम समतारस आदि भावों से युक्त हैं। यहाँ सिद्धों का स्वाभाविक सुख कहा है। लोग बाह्य पदार्थों में जो सुख मानते हैं, वह सुख नहीं है। सुख तो आत्मा में है। सिद्ध तो साक्षीरूप हैं, वे किसी के कर्ता-हर्ता नहीं हैं। जब आत्मा पूर्ण दशा को प्राप्त कर लेता है तो विषमता नहीं रहती। इसके अलावा एक आत्मा अपनी ही आत्मा का ज्ञान, श्रद्धान कर पूर्ण दशा को प्राप्त करना चाहे तो जितना समय संसार में भटकने में गया उतना काल सिद्ध दशा प्राप्त करने में नहीं लगता अर्थात् उसे अनंतकाल नहीं चाहिए, वह तो अल्पकाल में सिद्धदशा प्राप्त कर सकता है।

निश्चय से सिद्ध लोकाकाश जितने अपने असंख्य प्रदेशों में रहते हैं, तो भी उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से सिद्ध भगवान सिद्धशिला पर विराजमान हैं—ऐसा कहा जाता है।

संसार अवस्था में भी सभी जीव सिद्ध जीवों की तरह निश्चय से अपने-अपने असंख्य

प्रदेशों में ही रहते हैं। निगोद से लेकर सभी जीव अपने गुणों के आधारभूत असंख्य प्रदेशों में अपनी योग्यतारूप परिणमन करते हुए रहते हैं। जैसे संसारी जीव शरीर में रहता है—ऐसा कहना व्यवहार है, क्योंकि शरीर के साथ आत्मा एकमेक नहीं हो जाता; वैसे ही सिद्ध भगवान मोक्षशिला पर रहते हैं—ऐसा कहना निमित्ताधीन कथन है, क्योंकि भगवान और मोक्षशिला एकमेक नहीं हो गये, आकाश भी उनसे एकमेक नहीं हो गया।

तथा जीव जिस क्षेत्र में आत्मा का ज्ञान-ध्यान करके कर्मरहित होता है, सिद्धशिला में उसी की सीध में ऊपर रहता है, अन्य दूसरी जगह नहीं। सिद्ध जीव शुक्लध्यान प्रगट कर कर्मरहित यहीं होते हैं और ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोकाग्र में जाते हैं। जिससमय मुक्त होते हैं, उसीसमय लोक के अग्रभाग में पहुँच जाते हैं।

पहले जीव को सम्यग्दर्शन होता है, फिर मुनिपना अंगीकार करके, शुक्लध्यान में लीन होकर केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धदशा प्राप्त कर लेता है। सिद्धदशा आत्मा की पर्याय में होती है, अन्यत्र नहीं। कोई उपवास आदि शुभ भावों से सिद्ध नहीं होता है, एक ध्यान को ही मुक्ति का कारण कहा है। सम्यग्दर्शन ध्यान है, सम्यक्चारित्र ध्यान है, और शुक्लध्यान भी ध्यान है, वह तो एक उपाय ही है। केवलज्ञान होने पर चार कर्मों का नाश हुआ तथा सिद्ध होने पर शेष चार कर्मों का भी नाश हो जाता है, शरीर भी छूट जाता है, केवल स्वयं का आत्मा अकेला रह जाता है। मोक्षदशा तो अपनी पर्याय में प्रगट होती है, परंतु उपचार से लोक के अग्रभाग को मोक्ष का स्थान कहा जाता है।

जहाँ बड़े-बड़े धर्मात्मा विराजते हों, आत्मा के ज्ञान-ध्यान में ही लगे रहते हों; उस भूमि को व्यवहार से तीर्थक्षेत्र कहते हैं। वास्तव में तो जो आत्मा का ज्ञान-ध्यान करते हैं, वे ही वास्तव में तीर्थ हैं। जो स्वयं तिरता है और दूसरों के तारने में निमित्त है—इसप्रकार तिरने का उपाय करता हुआ जीव स्वयं तीर्थ है। फिर भी उस भूमि को व्यवहार से तीर्थक्षेत्र कहते हैं; वहाँ पर्वत, नदी, आदि धर्म नहीं कराते। पर्वत पर तिर्यंच रहते हैं, नदी में मछलियाँ रहती हैं—प्रतिदिन स्नान करती हैं, फिर भी उनके परिणाम अच्छे नहीं होते। इसलिए जो स्वयं तिरता है, उसके प्रति भूमि से तिरा-ऐसा आरोप आता है।

इसीप्रकार सिद्धजीव जहाँ रहते हैं, वहाँ निगोदिया जीव हैं, और वे अनंत-अनंत

आकुलता को भोगते हैं। इसलिए कोई स्थल धर्म और शांति का कारण नहीं, आत्मा की पूर्ण पवित्र दशा ही सुख का कारण है। आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से अरूपी है, वह तो अपने गुणपर्यायों में ही रहती है, और स्वयमेव आत्मा के गुण-पर्याय असंख्य प्रदेशों में रहते हैं, वह आत्मा का अपना क्षेत्र है। प्रत्येक वस्तु अपने में है, आकाश में नहीं। तब सिद्ध लोकाकाश के अग्रभाग में रहते हैं अथवा आत्मा आत्मा में रहता है—ऐसा कहना असद्भूतव्यवहारनय का कथन है।

यदि कोई अपने मकान के आगे दीवाल बनाये तो जीव झगड़ा करता है। अरे भाई! तू अभिमान छोड़, मकान आदि तेरी वस्तुयें नहीं हैं। जीव अपने मकान में रहता है या आकाश में रहता है, ऐसा कहना उपचार है। प्रत्येक जीव अपने असंख्य प्रदेशों में रहता हुआ गुण-पर्यायरूप परिणमित होता है, पर-रूप परिणमित नहीं होता। वह तो अपने स्वरूप में विराजित रहता हुआ शोभायमान हो रहा है, तो भी उपचरित असद्भूतव्यवहारनय से लोकाकाश में सभी द्रव्य रहते हैं ऐसा कहने में आता है। [क्रमशः]

श्रीगुरु की उपासना और आत्मानुभूति

तत्त्वविचार में चतुर, निर्मल चित्तवाला जीव गुणों में महान ऐसे सद्गुरु के चरण-कमलों की सेवा के प्रसाद से अंतर में चैतन्य परमतत्त्व का अनुभव करता है।

रत्नत्रय आदि गुणों से महान गुरु, शिष्य से कहते हैं कि परमभाव को जान, पर से भला-बुरा मानना छोड़कर देह में रहते हुये भी देह और शुभाशुभराग से भिन्न असंग चैतन्य परमतत्त्व को अंतर में देख। 'यही मैं हूँ'—ऐसे भावभासन द्वारा चैतन्य का अनुभव होता है।

श्रीगुरु के ऐसे वचन दृढ़ता से सुनकर निर्मल चित्तवाला शिष्य अंतर में तद्रूप परिणमित हो जाता है। ऐसी सेवा (उपासना) के प्रसाद से पात्र जीव आत्मानुभूति प्राप्त करता है।

—पूज्य स्वामीजी

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- पर्याय को परद्रव्य की अपेक्षा नहीं है, यह तो ठीक है। क्या पर्याय को स्वद्रव्य की अपेक्षा भी नहीं ?

उत्तर- छहों द्रव्य की पर्यायें जिस समय होनी हैं, वे पर्यायें षट्कारक की क्रिया से स्वतंत्रतया अपने जन्म-क्षण में होती हैं। उन्हें अन्य द्रव्य की तो अपेक्षा बिल्कुल है ही नहीं, और वास्तव में देखा जाये तो उन्हें स्वद्रव्य की भी अपेक्षा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय का जो जन्म-क्षण है, उसी जन्म-क्षण में क्रमबद्धपर्याय होती है। ऐसी स्वतंत्रता की बात जगत की प्रतीति में आना कठिन है।

प्रश्न- जिसे पुरुषार्थ नहीं करना है ऐसा जीव, 'क्रमबद्ध में जो होना होगा सो होगा'—ऐसा मानकर प्रमाद में पड़ा रहेगा और पुरुषार्थहीन हो जायेगा ?

उत्तर- अरे भाई! 'क्रमबद्ध' के निर्णय में अकर्तावाद का अनंत पुरुषार्थ होता है। अनंत पुरुषार्थ हुए बिना 'क्रमबद्ध' माना नहीं जा सकता। 'क्रमबद्ध' का सिद्धांत ऐसा है कि सारे ही विरोधों का अभाव कर दे। क्रमबद्ध में ज्ञातापने का—अकर्तापने का पुरुषार्थ है। राग को बदलना तो नहीं, किंतु पर्याय को भी करना या बदलना नहीं। बस, जाने... जाने... और जाने। समयसार गाथा ३२० में कहा है कि जीव बंध-मोक्ष को भी करता नहीं, जानता ही है। क्रमबद्ध के निर्णायक का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर है, द्रव्य के ऊपर लक्षवाला ज्ञाता है, उसको 'क्रमबद्ध' के काल में रागादि आते हैं, किंतु उनके ऊपर लक्ष्य नहीं है; अतः वह रागादि का जाननेवाला ही है।

एक 'क्रमबद्ध' को समझे तो सब निर्णय स्पष्ट हो जाये। निमित्त से होता नहीं, पर्याय आगे-पीछे होती नहीं और हुए बिना भी रहती नहीं। अपनी पर्याय के भी अकर्ता बन जाओ। 'क्रमबद्ध' का तात्पर्य वीतरागता है।

प्रश्न– समयसार की ग्यारहवीं गाथा को आप जैनदर्शन का प्राण कहते हो, उसमें तो व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है—झूठा कहा है। कृपया गाथा का रहस्य बताइये?

उत्तर– हाँ, ग्यारहवीं गाथा वास्तव में जैनदर्शन के प्राणरूप ही है। उसमें निश्चय-व्यवहारनय की बात की है, उसे यथातथ्य जानना चाहिये। राग, पर्याय, गुणभेद, यह सब व्यवहारनय के विषय हैं और यह सभी त्रिकाली वस्तु में नहीं हैं। इसलिए ही व्यवहारनय को झूठा कहकर अभूतार्थ कहा है; अर्थात् पर्याय है ही नहीं—इसप्रकार उसका सीधा-साधा अर्थ होता है, परंतु उसका आशय ऐसा है नहीं। पर्याय है अवश्य, उसके अस्तित्व का अस्वीकार नहीं किया जा सकता; परंतु जो त्रिकाली वस्तु है वह पर्याय नहीं है; इसलिये पर्याय की उपेक्षा करके गौण करके त्रिकाली ध्रुवज्ञायक की दृष्टि करवाई जाती है। क्योंकि त्रिकाली द्रव्य को मुख्य करके द्रव्य का अनुभव कराने का प्रयोजन है। ज्ञान वह आत्मा, ऐसा भेद भी दृष्टि के विषय में नहीं आता। अभेददृष्टा की दृष्टि में भेद दिखायी ही नहीं पड़ता, सत्यार्थदृष्टा को असत्यार्थ दिखायी नहीं पड़ता, नित्य देखनेवाले को अनित्य दृष्टिगोचर नहीं होता, भूतार्थ पर दृष्टि रखनेवाले को अभूतार्थ के दर्शन नहीं होते, तथा एकाकार देखनेवाले को अनेकाकार दृष्टि में नहीं आता। इसीकारण से भेदरूप व्यवहार को अभूतार्थ कहा है और निश्चयनय की विषयभूत त्रिकाली ध्रुववस्तु—एक ही—भूतार्थ होने से उसका आश्रय कराया है। अहो! यह आत्मतत्त्व तो गहन है, उसका निर्णय और अनुभव करने के लिये आचार्यों के अंतरंग अभिप्राय को पकड़ना होगा।

प्रश्न– समयसार की ग्यारहवीं गाथा में शुद्धनय का अवलंबन लेने को कहा, किंतु शुद्धनय तो ज्ञान का अंश है-पर्याय है; क्या उस अंश का अवलंबन लेने से सम्यक्त्व होगा?

उत्तर– वास्तव में शुद्धनय का अवलंबन लेना कब कहा जाये? अकेले अंश को पकड़कर उसके ही अवलंबन में जो अटक गया—उसे तो शुद्धनय है ही नहीं। ज्ञान के अंश को अंतर में लगाकर जिसने त्रिकाली द्रव्य के साथ अभेदता की—उसे ही शुद्धनय होता है, और ऐसी अभेददृष्टि हुई तभी शुद्धनय का अवलंबन लिया—ऐसा कहा जाता है। अर्थात् 'शुद्धनय का अवलंबन' ऐसा कहने पर उसमें भी द्रव्य-पर्याय की अभेदता की बात है। परिणति अंतर्मुख होने पर द्रव्य में अभेद हुई और जो अनुभव हुआ—उसका

नाम शुद्धनय का अवलंबन है, उसमें द्रव्य-पर्याय के भेद का अवलंबन नहीं है। यद्यपि शुद्धनय स्वयं ज्ञान का अंश है, पर्याय है; परंतु वह शुद्धनय अंतर के भूतार्थस्वभाव में अभेद हो गया है, अर्थात् वहाँ नय और नय का विषय जुदा नहीं रहा। जब ज्ञानपर्याय अंतर में झुककर शुद्धद्रव्य के साथ अभेद हुई तब ही शुद्धनय हुआ—यह शुद्धनय निर्विकल्प है।

प्रश्न- द्रव्य में पर्याय नहीं है तो फिर पर्याय को गौण क्यों कराया जाता है ?

उत्तर- द्रव्य में पर्याय नहीं है; जो वर्तमान प्रकट पर्याय है—वह पर्याय, पर्याय में है। सर्वथा पर्याय है ही नहीं—ऐसा नहीं है। पर्याय है उसकी उपेक्षा करके, गौण करके, है नहीं—ऐसा कहकर, पर्याय का लक्ष्य छुड़ाकर, द्रव्य का लक्ष्य और दृष्टि कराने का प्रयोजन है। इसलिए द्रव्य को मुख्य करके, भूतार्थ है—उसकी दृष्टि करायी है और पर्याय की उपेक्षा करके, गौण करके, पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है—ऐसा कहकर उसका लक्ष्य छुड़ाया है। यदि पर्याय सर्वथा ही न होवे तो उसके गौण करने का प्रश्न ही कहाँ से हो ? प्रथम वस्तु का अस्तित्व स्वीकार करके ही उसकी गौणता बन सकती है। इसप्रकार द्रव्य और पर्याय दोनों मिलकर ही पूर्णद्रव्य कहलाता है और वह प्रमाणज्ञान का विषय है।

प्रश्न- निश्चयश्रुतकेवली किसे कहते हैं ?

उत्तर- दर्शन-ज्ञान-चारित्र से जो आत्मा का अनुभव करता है, वह निश्चयश्रुतकेवली है। जिसमें से केवलज्ञान प्रकट होनेवाला है, ऐसे आत्मा को जिसने स्वानुभव से जाना वह परमार्थ से श्रुतकेवली है। उसको अल्पकाल में केवलज्ञान अवश्य होनेवाला है, इसलिये उसे परमार्थ से श्रुतकेवली कहा है। तथा इस आत्मा को जाननेवाली जो श्रुतज्ञान की पर्याय है उसमें 'ज्ञान सो आत्मा' ऐसा भेद पड़ता है; अतः उस ज्ञान-पर्याय को व्यवहारश्रुतकेवली कहा। जो ज्ञानपर्याय सर्व को जानती है, वह स्व-पर की ज्ञायक ज्ञानपर्याय सर्वश्रुतज्ञान है—उसको व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं।

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड के निरीक्षक पंडित रमेशचंदजी (इटावावालों) ने गुना, म्याना, कोलारस, झाँसी, शिवपुरी, ग्वालियर (दानाओली, माधौगंज, मामा का बाजार), खनियांधाना, अशोकनगर, मुंगावली, पिपरई, बीना खुरई, सागर (चकराघाट, इतवारी टोरी, कटारा बाजार, सर्राफा बाजार) में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया। उन्होंने कोलारस नगर के अध्यात्ममय वातावरण तथा पाठशाला की प्रगति को देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की है।

आपकी प्रेरणा से ही कुंभराज, आरोंन में कई महीनों से बंद पाठशालाएँ भी पुनः प्रारंभ की गईं तथा लश्कर (डीडवाना ओली) में नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ की गई। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से भी समाज ने लाभ लिया।

फार्म भरने की अंतिम तिथि अब २० नवंबर

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर द्वारा फरवरी, १९८० में ली जानेवाली परीक्षाओं में प्रवेश लेने हेतु फार्म भरकर भेजने की अंतिम तिथि १ नवंबर से बढ़कर २० नवंबर कर दी गई है। अब बिना लेट फीस के २०-११-७९ तक तथा लेट फीस सहित ३० नवंबर तक फार्म स्वीकार किये जा सकेंगे। **—मंत्री**

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में शिक्षण-शिविर आयोजित

भीलवाड़ा (राज०) :- दिनांक १४-१०-७९ से २४-१०-७९ तक अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में दस दिवसीय शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न हुआ। शिविर का उद्घाटन फैडरेशन के अध्यक्ष पंडित जतीशचंदजी ने ज्ञानदीप जलाकर किया। टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित राजकुमारजी के प्रवचन प्रतिदिन चलते थे। इसके अतिरिक्त उदयपुर से पधारे पंडित मांगीलालजी अग्रवाल एवं श्री राजेश टाया ने प्रौढ़ों एवं बालकों की कक्षाऐं लीं। दोपहर में ब्रह्मचारी राजमलजी की तत्त्वचर्चा चलती थी, साथ ही किरणबहिन ने भी छहढाला की कक्षाऐं लीं। शिविर का समापन पंडित उग्रसेनजी बंडी के सान्निध्य में संपन्न हुआ। प्रशिक्षणार्थियों को धार्मिक साहित्य भेंट किया गया। अंत में विशाल जुलूस भी निकाला गया। ग्रीष्मकालीन अवकाश में इसीप्रकार का एक और शिविर लगाने की समाज की भावना है। **—अशोक लुहाड़िया**

समाचार दर्शन

श्री कानजीस्वामी दि० जैन विश्रांतिगृह का शिलान्यास
बीस लाख रुपए की निर्माण योजना—सात लाख की स्वीकृतियाँ प्राप्त

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) :- यहाँ दिनांक २६-१०-७९ को दि० जैन छात्रावास से लगी हुई ११ हजार वर्गगज भूमि में पूज्य श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में 'श्री कानजीस्वामी दि० जैन विश्रांतिगृह' का शिलान्यास समारोह श्री उमेदमल भभूतमलजी भंडारी बैंगलोर के शुभहस्तों से श्री शांतिभाई चिमनलाल शाह जवेरी बम्बई एवं पोपटलाल मोहनलाल बोहरा के परिवार वालों के मुख्य आतिथ्य में संपन्न हुआ।

शिलान्यासकर्ता एवं मुख्य अतिथियों के साथ-साथ उपस्थित जनसमुदाय ने भी मात्र वाचनिक अनुमोदन ही नहीं किया, बल्कि मुक्तहस्त से आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया। परिणामस्वरूप सात लाख से अधिक के वचन उसी समय प्राप्त हो गये।

कार्यकर्ताओं का दृढ़ संकल्प है कि आगामी जुलाई में होनेवाले शिक्षण-शिविर में आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहिनों को ठहरने के लिये भवन बनकर तैयार हो जाये। इस अवसर पर आस-पास के हजारों भाई-बहिनों के साथ-साथ मद्रास, बम्बई आदि सुदूरवर्ती क्षेत्रों से भी सैकड़ों व्यक्ति पधारे थे। उन सबको पूज्य गुरुदेवश्री के प्रातःकाल समयसार पर व मध्याह्न में प्रवचनसार पर हो रहे मार्मिक प्रवचनों का लाभ तो मिला ही; साथ ही रात्रि में ५ दिन तक डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल के महावीर निर्वाणोत्सव एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन सुनने का लाभ भी मिला।

स्मरण रहे उक्त कार्य पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता के निर्देशन में तथा श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल बम्बई के तत्त्वावधान में संपन्न हो रहा है। बम्बई मुमुक्षु मंडल के अध्यक्ष श्री चिमनभाई शाह एवं श्री कांतिभाई मोटानी इस कार्य में विशेष सक्रिय हैं।

पर्यूषण पर्व के विलंब से प्राप्त समाचारों को अब विस्तार से देना उपयुक्त नहीं है। अतः केवल गाँव एवं वहाँ गये विद्वानों के नाम ही प्रकाशित किये जा रहे हैं, जो इसप्रकार हैं:—

देहरादून (उ०प्र०) - पंडित कैलाशचंदजी, बुलंदशहर। **खनियाधाना (म०प्र०)** - पंडित मिश्रीलालजी चौधरी, गुना। **अम्बाह (म०प्र०)** - पंडित मक्खनलालजी, मौ।

फुटेरा (म०प्र०) - श्री राजारामजी पटवारी एवं पंडित ऋषभकुमारजी, बमनपुरा। **मोहली (म०प्र०)** - पंडित वीरचंदजी, घौरा। **सागर (म०प्र०)** - पंडित नवलचंदजी शाह, सोनगढ़। **गढ़ाकोटा (म०प्र०)** - ब्रह्मचारी आत्मानंदजी। **खातेगाँव (म०प्र०)** - पंडित प्रकाशचंदजी, इंदौर। **मौ (म०प्र०)** - पंडित रंगलालजी, कुरावड़। **चंदेरी (म०प्र०)** - पंडित उग्रसेनजी बंडी, उदयपुर। सभी स्थानों पर विद्वानों के तात्त्विक प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुई।

हस्तिनापुर में जैन मेला : डॉ० भारिल्लजी द्वारा धर्म प्रभावना

हस्तिनापुर (उ०प्र०) :- हस्तिनापुर मेले के अवसर पर सुप्रसिद्ध अध्यात्मप्रवक्ता डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल १-११-७९ को यहाँ पधारे। तीन दिन तक तीनों समय आपके मार्मिक प्रवचन हुए। डॉ० भारिल्लजी के साथ पधारे अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के अध्यक्ष ब्रह्मचारी जतीशचंदजी के भी मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन हुए। २-११-७९ को रात्रि को प्रवचन के पश्चात् कवि सम्मेलन का कार्यक्रम हुआ, जिसमें देश के कोने-कोने से अनेक विख्यात कविगण पधारे। ३-११-७९ को सायंकाल ७ बजे ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का जयंती-महोत्सव मनाया गया, वक्ताओं के अतिरिक्त डॉ० भारिल्लजी ने भी अपने विचार व्यक्त किये। इसके पश्चात् विशाल सभा में 'अहिंसा' विषय पर आपका मार्मिक व्याख्यान हुआ। इस अवसर पर संगीत-सभा भी आयोजित की गई, जिसमें रेडियो कलाकार उमा गर्ग एवं हरिश्चंद्र पंवार ने अपने आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। गुरुकुल के छात्रों द्वारा रोचक नाटक भी प्रस्तुत किया गया।

इसी दिन दोपहर में मुनिश्री शांतिसागरजी महाराज को आचार्य पदवी दी गई। उक्त मेले के अवसर पर भूगर्भ से प्राप्त १३०० वर्ष पुरानी प्रतिमाओं के दर्शन करीब एक लाख से भी अधिक दर्शनार्थियों ने किये। अंतिम दिन विशाल रथयात्रा का आयोजन किया गया। मेले में आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये तथा लगभग १०००) रुपये का सत्साहित्य बिका।

— सरमनलाल 'दिवाकर'

आचार्य श्री जयसागरजी महाराज का मंगल आशीर्वाद

मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) :- हस्तिनापुर मेले के पश्चात् आचार्य श्री जयसागरजी के आग्रह पर ५-११-७९ को डॉ० भारिल्लजी यहाँ पधारे। दोपहर में लगभग २ घंटे तक मुनिश्री

के साथ भारिल्लजी की चर्चा हुई। 'क्रमबद्धपर्याय' पुस्तक के लेखन पर मुनिश्री ने भारिल्लजी को शुभाशीष दिया। आपने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''क्रमबद्धपर्याय तो चारों अनुयोगों में है। धवला, महाधवला, जयधवला आदि ग्रंथों में भी क्रमबद्ध तथा सर्वज्ञता-पोषक बातें हैं। एक सच्चा जैन होने के लिए क्रमबद्धपर्याय तथा सर्वज्ञता मानना बहुत जरूरी है। क्रमबद्धपर्याय का निबंध लिखकर इन्होंने बहुत मर्म खोला है। आप तत्त्वप्रचार का कार्य इसीप्रकार करते रहें। आपको हमारा मंगल आशीर्वाद है।''

महाराजश्री की प्रेरणा से आत्मधर्म के करीब १० आजीवन सदस्य बने तथा वीतराग सत्साहित्य की बिक्री भी बहुत अच्छी हुई। दिनांक ५-११-७९ को नई मंडी समाज के अध्यक्ष श्रीमान् गुलशरनरायजी जैन तथा उपाध्यक्ष श्रीमान् भागचंदजी जैन के विशेष आग्रह पर प्रातः मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा रात्रि में 'अहिंसा' विषय पर डॉ० भारिल्लजी का सारगर्भित व्याख्यान हुआ। दोपहर में जैन गर्ल्स इंटर कॉलेज में भी आपका व्याख्यान हुआ। समाज ने पर्यूषण पर्व पर विद्वान भेजने का आग्रह किया।

दिल्ली (शाहदरा) :- आध्यात्मिक प्रवक्ता डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल हस्तिनापुर जाते समय ३१-१०-७९ को एक दिन के लिए शाहदरा दि० जैन मंदिर के शिलान्यास समारोह में पधारे। यहाँ पर आपका सारगर्भित प्रवचन मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार पर हुआ। तत्पश्चात् आर्यिका राजमतिजी का भी प्रवचन हुआ। मंदिर निर्माण हेतु तत्काल लगभग १५०००/- रुपये की राशि एकत्र हुई तथा ७०-७५ हजार रुपये के वचन प्राप्त हुए। मंदिर का निर्माण कार्य शीघ्र ही प्रारंभ किया जा रहा है।

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा धर्मप्रभावना

दिनांक ५-१०-७९ से १९-१०-७९ पंद्रह दिन तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के ग्वालियर, गोहद, मौ, अमायन, गोरमी, भिंड, इटावा, जसवंतनगर, करहल, मैनपुरी, कुरावली तथा भोगाँव में आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन तीनों समय किया गया। सभी स्थानों पर समाज ने बहुत उत्साह से लाभ लिया। इस अवसर पर कुंदकुंद कहान दिग० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को पूर्व में लिखाई गई रकमों में से ७५,४३९ रुपये नगद प्राप्त हुए तथा १६,८४३ रुपये की नवीन राशियाँ लिखाई गई। स्थान-स्थान पर युवा फैडरेशन के कार्यकर्ताओं ने उत्साहपूर्वक लाभ लिया।

— माणिकलाल आर० गाँधी

सिद्धचक्र मंडल विधान का विशेष आयोजन

जयपुर (राज०) :- अष्टाह्निका पर्व के मांगलिक प्रसंग पर २८ अक्टूबर, ७९ से सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन मारूजी के चौक में स्थित श्री दि० जैन मंदिर में श्रीमती रतनदेवी की ओर से किया गया। प्रतिदिन विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त दोनों समय टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के प्राचार्य पंडित रतनचंदजी भारिल्ल के तात्त्विक प्रवचनों का विशेष आयोजन किया गया। आपके प्रभावक प्रवचनों से हजारों मुमुक्षुओं ने लाभ लिया। कार्यक्रमों में 'सती अंजना' नाटक एवं श्रीमती कनक हाडा के भजन बहुचर्चित रहे।

बेगूं (चित्तौड़) :- अष्टाह्निका महापर्व के पावन अवसर पर दिनांक ३१-१०-७९ से ७-११-७९ तक दि० जैन समाज द्वारा सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन किया गया। कार्यक्रम को सफल कराने में समाज के विशेष आग्रह पर अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के द्वारा भेजे गये श्री पंडित अभिनंदनकुमारजी शास्त्री जयपुर ने प्रतिदिन सुबह शाम प्रवचन किये तथा श्री शिखरचंदजी शास्त्री जयपुर ने छात्र-छात्राओं की कक्षायें लीं। इस धर्म कार्य में समीपस्थ १५ गाँवों के करीब एक हजार व्यक्तियों ने आकर धर्म लाभ लिया। अंतिम दिन रथयात्रा निकाली गयी, जिससे महान धर्म प्रभावना हुई। इस समय कार्यक्रम को संपन्न कराने में श्री भूरामलजी का विशेष सहयोग रहा। १६ आत्मधर्म के ग्राहक बने तथा १५०) का साहित्य विक्रय हुआ।

— भागचंद टोंग्या

अजमेर (राज०) :- श्री दि० जैन पंचायत गोधों का घड़ा की नसियाँ में अष्टाह्निका पर्व पर दिनांक २८-१०-७९ से ४-११-७९ तक सिद्धचक्रमंडल विधान का आयोजन श्री निहालचंदजी पांड्या के द्वारा किया गया। इस अवसर पर प्रारंभ के दो दिनों में पंडित अभयकुमारजी जयपुर के एवं बाद में पंडित शिखरचंदजी बड़ौत के दोनों समय तात्त्विक प्रवचन हुए। आपके प्रवचनों से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई। रात्रि में भजन-नृत्यादि का कार्यक्रम रहा। पूजन विधान पंडित चंपालालजी जैन नसीराबाद द्वारा संपन्न हुआ। अनंत में दिनांक ८-११-७९ को विशाल रथयात्रा निकाली गई।

—पदमकांत गदिया

उदयपुर (राज०) :- २८-१०-७९ से ४-११-७९ तक सिद्धचक्रमंडल विधान का आयोजन किया गया। कार्यक्रम पंडित मनोरंजनजी शास्त्री के निर्देशन में संपन्न हुआ।

— मोहनलाल जैन

कुरावली (उ०प्र०) :- १४-९-७९ से २३-९-७९ तक सिद्धचक्रमंडल विधान का आयोजन किया गया। पंडित धन्नालाल, ग्वालियर एवं पंडित देवीलालजी, उदयपुर के मोक्षमार्गप्रकाशक एवं छहढाला पर सारगर्भित प्रवचन हुए। **— केशवचंद जैन**

जयपुर (राज०) :- स्थानीय श्री पार्श्वनाथ जिन मंदिर, बापूनगर का वार्षिक मेला सानंद संपन्न हुआ। दिनांक ६-१०-७९ को डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल का मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रभावी प्रवचन हुआ तथा दूसरे दिन अपराह्न २ से ४ तक संगीत के साथ भक्तिभाव सहित पूजन हुई। सायंकाल ४ से ५ तक पंडित रतनचंदजी भारिल्ल का प्रवचन हुआ जिसे समाज ने मंत्र-मुग्ध होकर सुना। दोनों दिन के कार्यक्रमों से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। **— भंवरलाल पाटनी**

जयपुर (राज०) :- दिनांक २०-१०-७९ को स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव मनाया गया। प्रातः पूजन एवं निर्वाण लाडू चढ़ाने के पश्चात् डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल का सारगर्भित प्रवचन हुआ।

भोपाल (म०प्र०) :- दिनांक १९-१०-७९ को ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी पधारे। दीपावली पर्व पर समाज ने आपका सम्मान किया। आपने चौक स्थित वीतराग-विज्ञान पाठशाला का निरीक्षण किया तथा बच्चों को पुरस्कार वितरण किये। **— सुभाष जैन**

जबेरा (म०प्र०) :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन एवं वर्द्धमान झांकी मंडल के तत्त्वावधान में भगवान महावीर निर्वाणोत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। पंडित विनोदकुमारजी ने दीपावली पर्व के महत्त्व पर प्रकाश डाला। दूसरे दिन रात्रि में 'अंजनचोर नाटक' एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। **— उदयकुमार 'दूरदर्शी'**

घौरा (म०प्र०) :- दिनांक १-१०-७९ से १०-१०-७९ तक तत्त्वज्ञान शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर बड़ौत से पधारे पंडित धर्मदासजी के प्रवचनों से स्थानीय तथा समीपवर्ती ग्रामों के जैन-जैनेतर बंधुओं ने लाभ उठाया। **—हेमचंद जैन**

कोलारस (म०प्र०) :- दिनांक २१-९-७९ से २९-९-७९ तक पंडित धर्मदासजी बड़ौतवालों के चारों समय तात्त्विक प्रवचन आयोजित किये गये। आपके प्रवचनों को समाज ने मंत्र-मुग्ध होकर सुना तथा लाभ उठाया। **— मांगीलाल जैन**

खनियाधाना (म०प्र०) :- दिनांक १-१०-७९ से ९-१०-७९ तक समाज के विशेष आग्रह पर पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहर वाले पधारे। तीनों समय जैन सिद्धांत

प्रवेशरत्नमाला की कक्षाओं का आयोजन किया गया। समाज में अच्छी प्रभावना हुई।

—गेंदालाल जैन

मौ (म०प्र०) :- दिनांक २७-९-७९ से २१-१०-७९ तक स्थानीय समाज के तत्त्वावधान में दसवाँ वीतराग-विज्ञान शिक्षण-शिविर आयोजित किया गया। इस अवसर पर ब्रह्मचारी निर्मलकुमारजी दमोहवालों के पधारने से समाज को विशेष लाभ मिला। शिविर की व्यवस्था अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा की गयी। **— जिनेशचंद जैन**

बड़नगर (म०प्र०) :- दिनांक १७-९-७९ से २७-९-७९ तक इंद्रध्वज मंडल विधान का आयोजन किया गया। पंडित विष्णुकुमारजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ समाज को मिला। **— प्रमोद सर्राफ**

छतरपुर (म०प्र०) :- ३१ जनवरी से ६ फरवरी, १९८० तक अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त इस पर्यटक केंद्र पर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होना निश्चित हुआ है। इस अवसर पर विभिन्न संस्थाओं के अधिवेशन भी आयोजित किये जाऐंगे। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर युवा सम्मेलन करने का विचार है। सभी युवा संगठनों के पदाधिकारी अपने-अपने संगठनों की सूची निम्न पते पर भेजें:— **कमलकुमार जैन,** जैन धर्मशाला के पास, छतरपुर (म०प्र०)

पाठकों के पत्र

मुरादाबाद (उ०प्र०) से श्री दिग्विजयसिंहजी जैन लिखते हैं:-

आत्मधर्म मासिक पत्र का मैं निरंतर पाठक हूँ। आत्मा की अमरता के संबंध में आध्यात्मिक विचारों के अध्ययन और मनन से बाह्य आडंबरों से मुक्त होकर निर्लिप्त आत्मज्योति को प्राप्त करने का मेरा प्रयास सफलता की ओर अग्रसर है। ऐसे श्रेष्ठ पत्र को प्रकाशित करने के लिये आप बधाई के पात्र हैं।

सोलापुर (महा०) से कु० प्रणया र० शहा लिखती हैं:-

आत्मधर्म पढ़कर मुझे अपूर्व शांति महसूस होती है। मैं जो निरंतर स्वाध्याय करती हूँ, उसमें मुझे आनेवाली उलझन आत्मधर्म से सुलझती है।

गामडापाल (राज०) से श्री झम्मकलालजी जैन लिखते हैं:-

आत्मधर्म पढ़कर मन से विकल्पों की भ्रांतियाँ दूर हुईं एवं ज्ञान की जागृति पैदा हुई। मुझे विश्वास है कि हर महीने नये-नये तत्त्वों के ग्रहण करने से ज्ञान-चेतना प्राप्त होगी।

पानीपत (हरियाणा) से श्री शुभकरणजी सेठिया लिखते हैं:-

आत्मधर्म के अंक नियमित पढ़ता हूँ। अभी हाल में 'धर्म के दशलक्षण' पुस्तक भेंट में मिली है, इसका तो आनंद ही अलग है।

बम्बई (महा०) से श्री सुरेन्द्रकुमारजी सिंघवी लिखते हैं:-

आत्मधर्म का नया अंका पढ़ा। यह अत्यंत रुचिकर एवं ज्ञानवर्द्धक लगा।

ग्वालियर (म०प्र०) से श्री धनपतलालजी जैन एडवोकेट लिखते हैं:-

आत्मधर्म पत्रिका पढ़ी। बड़ी अच्छी ज्ञानवर्द्धक लगी।

भोपाल (म०प्र०) से श्री फूलचंदजी गोयल लिखते हैं:-

श्री भारिल्लजी के संपादकत्व में निश्चय ही पत्रिका का स्वरूप सरल, हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक हुआ है।

सागर (म०प्र०) से श्री मन्नूलालजी जैन एडवोकेट लिखते हैं:-

आत्मधर्म बहुत ही उत्तम निकल रहा है। पूज्य गुरुदेव की वाणी के प्रसार में भारिल्लजी का सहयोग सराहनीय है।

उदयपुर (राज०) से श्री अजितकुमारजी जैन लिखते हैं:-

आत्मधर्म का नया अंक पढ़ा। उसमें आपके द्वारा लिया गया इंटरव्यू बहुत ही अच्छा था एवं इसके पहले जब-जब भी इंटरव्यू आये, बहुत ही अच्छे लगे।

प्रबंध संपादक की कलम से

नोट :- कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें:-

(१) जिन ग्राहकों के भेंट कूपन हमारे कार्यालय में अब तक आये थे, उन सभी को भेंट की पुस्तक भेजी जा चुकी है।

(२) नवीन बननेवाले ग्राहकों से निवेदन है कि उन्हें पुराने अंक नए अंक के साथ प्रत्येक माह की ५-६ तारीख को ही भेजे जाते हैं। अत: कृपया बीच में शिकायती पत्र भेजने का कष्ट न करें।

(३) सभी ग्राहकों के पुराने ग्राहक नंबर निरस्त कर जुलाई में नए नंबर दिए गए हैं। आपके रैपर पर पुराना एवं नया दोनों ग्राहक नंबर छपे रहते हैं। पत्र व्यवहार करते समय नये ग्राहक नंबर का उल्लेख करें- ताकि समाधान सुलभता से हो सके।

नैरोबी (अफ्रीका) जानेवालों को आवश्यक सूचनाऐं

(१) जिन बंधुओं का नैरोबी जाने का रिजर्वेशन हो चुका है, उन्हें जाने की तिथि से अवगत करा दिया है। जिनको अभी तक सूचना प्राप्त नहीं हुई हो वे निम्नांकित पते पर पत्र लिखकर अपनी तिथि मालूम कर लें। निश्चित तिथि के पाँच दिन पूर्व बम्बई पहुँचना आवश्यक है। बम्बई आने से पहले चेचक और कालेरा के इंजेक्शन अवश्य लगवा लें और आपको भेजी गई पुस्तिका में प्रमाणपत्र ले लें। Yellow Fever का इंजेक्शन बम्बई में लगेगा।

(२) हवाई जहाज का किराया बढ़ जाने के कारण सभी कन्सेशन टिकट वालों को ४,५०० रुपये देने होंगे। अत: कृपया अपनी बाकी की रकम तुरंत भेजें।

(३) जिन बंधुओं को ५०० डालर फारेन एक्सचेंज लेना हो वे कृपया यहाँ से भेजे गए फार्म पर हस्ताक्षर करके पासपोर्ट साइज की ४ फोटुओं सहित ४,३००) रुपये का ड्राफ्ट तुरंत भेजें।

(४) प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ छाता, चादर, टॉविल, शाल, स्वेटर और पहिनने के कपड़े साथ लावें। बैंडिंग लाने की आवश्यकता नहीं है। सभी सामान का कुल वजन २० किलो से अधिक नहीं होना चाहिए। किसी भी प्रकार के कीमती गहने आदि पहनकर न आवें।

(५) जिन्होंने अभी तक अपना पासपोर्ट नहीं भेजा है, वे कृपया अपना पासपोर्ट तुरंत ही भेज दें।

(६) बम्बई में एयरपोर्ट जाने के लिए मुम्बादेवी स्थित सीमंधर जिनालय से बसों की व्यवस्था की गई है।

(७) बम्बई में रहने की व्यवस्था के लिए आने के पूर्व हमसे पत्र या फोन द्वारा संपर्क अवश्य कर लें।

फोन : घर : ३६८३०५, ३८६४८३
ऑफिस : ३७४२८०
मंदिर : ३२५२४१

पता :- बलुभाई शाह
द्वारा श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल
१७३/१७४, मुम्बादेवी रोड, बम्बई-४०००००२

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के भवन का शिलान्यास

जयपुर (राज०) :- चिरप्रतीक्षित टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के नए भवन का शिलान्यास समारोह विविध कार्यक्रमों के साथ दिनांक १-१२-७९ से ३-१२-७९ तक संपन्न होगा।

१ दिसंबर को हो रहे इस समारोह के मुख्य अतिथि सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल, दिल्ली होंगे। राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन समारोह की अध्यक्षता करेंगे। शिलान्यासकर्ता हैं—विद्वद्वर्य पंडित लालचंद अमरचंद मोदी, राजकोट; सेठ रतनलालजी गंगवाल, कलकत्ता; एवं सेठ श्री शांतिभाई जवेरी, बम्बई। रात्रि को श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर की अध्यक्षता में श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का पंचवर्षीय अधिवेशन श्री साहू अशोककुमारजी जैन, दिल्ली के मुख्य आतिथ्य में संपन्न होगा। अधिवेशन का उद्घाटन श्री प्रेमचंदजी जैन (जैना वाच कंपनी), दिल्ली करेंगे।

२ दिसंबर को प्रात: टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय का द्विवार्षिकोत्सव सिंघई धन्यकुमारजी, कटनी की अध्यक्षता में तथा सेठ भभूतमलजी भंडारी, बंगलौर व सेठ श्री मीठालालजी, बम्बई के मुख्य आतिथ्य में संपन्न होगा। इसका उद्घाटन साहू अशोककुमारजी जैन, दिल्ली करेंगे। दोपहर २ बजे कुंदकुंद कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के अधिवेशन का द्वितीय दौर चलेगा। इसकी अध्यक्षता पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर करेंगे। समारोह के मुख्य अतिथि श्री नेमीचंदजी जैन, दिल्ली एवं सेठ गजानंदजी पाटनी, गया होंगे। रात्रि को ७.४५ से अ० भा० जैन युवा फैडरेशन का कार्यकर्ता सम्मेलन सेठ श्री चिमनलाल हिम्मतलालजी, बम्बई वालों की अध्यक्षता में होगा। सम्मेलन का उद्घाटन श्री कांतिभाई मोटाणी, बम्बई करेंगे।

३ दिसंबर को प्रात: ९ बजे टोडरमल जयंती महोत्सव का आयोजन किया गया है। इसकी अध्यक्षता सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी शास्त्री, वाराणसी करेंगे। समारोह पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री, वाराणसी के मुख्य आतिथ्य में संपन्न होगा। इसका उद्घाटन पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी करेंगे।

इस अवसर पर और भी अनेक गणमान्य श्रीमान एवं धीमान पधारेंगे तथा सभी समागत विद्वानों के प्रवचनों का लाभ भी समाज को प्राप्त होगा। अधिक से अधिक संख्या में पधारकर धर्मलाभ लें।

पधारनेवाले बंधु सूचना अवश्य दें, जिससे उनके आवास आदि की समुचित व्यवस्था की जा सके। बिना सूचना के पधारने से व्यवस्था करने में हमें कठिनाई एवं उन्हें व्यर्थ थोड़ी-बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। अत: कृपया ध्यान रखें।

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४